क्षेमेन्द्रकृत

कविकण्ठाभरण

टीकाकारः
प्रा० वामन केशव लेले

महाकविक्षेमेन्द्रकृत

कविकण्ठाभरण

[भूमिका, अनुवाद, टिप्पणी, संक्षिप्त समालोचन
एवं सूचियों के साथ]

सम्पादक
प्रा. वामन केशव लेले,
एम. ए.
भारतीय-भाषा-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

प्रकाशक
मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली : पटना : वाराणसी

प्रकाशक :—
सुन्दरलाल जैन,
मोतीलाल बनारसीदास,
नेपाली खपरा,
वाराणसी ।

प्रथम संस्करण
१९६७
मूल्य २=००

मुद्रक—
बालकृष्ण शास्त्री
ज्योतिष प्रकाश प्रेस,
कालभैरव मार्ग, वाराणसी–१

परमादरणीय प्राध्यापक

स्वर्गीय हरि दामोदर वेलणकरजी

की पवित्र स्मृति में

समर्पित—

विषयानुक्रमणिका

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१५	साहित्य	साहित्यशास्त्र
१४	१३	सन्यासी	संन्यासी
१७	७	अनुसारयह	अनुसार यह
३०	७	जानकार	जानकारी
३२	२१	का	के
३३	१९	३८	३९
४२	१	क्षेमेन्द्रकृत	क्षेमेन्द्रकृतं
४४	२६	याग्य	योग्य
४९	१४	-च्छाङ्कर	-च्छाङ्कुर
५४	१३	वाक्यार्थ-	वाक्यार्थ
५८	२०	निगूहितम्	निगूहितुम्
६५	१०	चित्त	चित्त को
७५	२२	स्पष्टरूप	स्पष्टरूप से
९०	१८	हुआ कज्जल का बिन्दु	हुए कज्जल के बिन्दु को
९१	९	निकलनेवाले	निकलनेवाली
९४	९	रचनाओं कों	रचनाओं को अपनाओ।
९६	२	रहनेवाला अन्तर	रहनेवाले अन्तर को

९९	१९	चक्रवर्तित्वसिद्धये	चक्रवर्तित्वसिध्यै
९९	२३	तार्द्दुपासनाम्	तद् विदुपासनाम्
१००	१९	किय	किया
१०४	१४	यह	इसको
१०६	५	प्रतिपदमुदश्र	प्रतिपदमुदश्रु
१०६	१६	क	को
१०९	५	वस्त्र	वस्त्र को
११२	११	द्यतपरिचयो	द्यूतपरिचयो

क्षेमेन्द्रकृत कविकण्ठाभरण

भूमिका

संस्कृत साहित्यशास्त्र का आरम्भ-काल—

कविवर राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में एक जगह[1] कहा है कि, हर एक शास्त्र का प्रारंभिक रूप सूक्ष्म रहता है, बाद में उस शास्त्र में और प्रवाह सम्मिलित हो जाते हैं, जिससे वह शास्त्र लोकवन्द्य बन जाता है। राजशेखर द्वारा कथित यह सर्वसाधारण नियम संस्कृत साहित्यशास्त्र पर भी लागू होता है। यद्यपि हम भरतमुनिप्रणीत नाट्य-शास्त्र को संस्कृत साहित्यविचार की गङ्गोत्री मानते हैं, तथापि साहित्य-विचारविमर्श का प्रारम्भ भरतपूर्व काल में ही हो चुका था। विद्वद्वर डॉ॰ काणे[2] के कथन के अनुसार वेदोपनिषत्कालीन साहित्य में उपमा, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, श्लेष आदि अलंकार प्रतीत होते हैं। मन्त्रदर्शी ऋषिमुनियों को यह जँचा था कि, काव्य की भाषा दैनंदिन व्यावहारिक भाषा से भिन्न होती है। वे यह भी जानते थे कि काव्य सहृदयों को परमानन्द (निर्वृति) प्रदान करता है। इस प्रकार वेदोपनिषत्काल में ही काव्यविद्या के विषय में विचार अल्पमात्रा में शुरू हो चुका था। इसी विचार का वर्द्धन तथा पोषण वेदोपनिषदुत्तरकाल में हुआ। ऐसा होना भी स्वाभाविक ही था; क्योंकि वेदोत्तरकालीन महाभारत, रामायण आदि आर्षकाव्य तथा पाणिनि, वररुचि, अश्वघोष आदि कवियों की रचनाएँ वैदिक वाङ्मय की अपेक्षा प्रेरणादृष्ट्या भिन्न, प्रयोजन-दृष्ट्या

---

१. 'सरितामिव प्रवाहास्तुच्छाः प्रथमं यथोत्तरं विपुलाः। ये शास्त्रसमारंभा भवन्ति लोकस्य ते वन्द्याः॥'—काव्यमीमांसा, द्वितीयोऽध्यायः।

२. द्रष्टव्य—History of Sanskrit Poetics, 1961, Part II, pp. 326-341.

अलग एवं पद्धति-दृष्ट्या पृथक् थीं। अतएव इस वेदोत्तर साहित्य की वैदिक साहित्य से तुलना करने की इच्छा विचारकों के अन्तःकरणों में अंकुरित हुई। उस इच्छा से ही साहित्यगत सौन्दर्य की समीक्षा करने के सिद्धान्त धीरे-धीरे प्रसूत हुए। इसीलिए ख्रिस्तपूर्व सातवीं सदी के यास्काचार्य के निरुक्त में उपमा की एक शास्त्रीय परिभाषा प्रस्तुत की गयी है। वररुचि ने भी (काल ख्रिस्तपूर्व चौथी सदी) अपने वार्तिक में 'आख्यायिका' काव्यभेद का निर्देश किया है और पतंजलि ने तो इस वार्तिक पर भाष्य करते समय तीन आख्यायिका-ग्रन्थों का स्पष्टतया नामोल्लेख किया है।[1] तात्पर्य यह है कि, संस्कृत साहित्यशास्त्र की जड़ें बहुत प्राचीन काल तक के वाङ्मय में अनुस्यूत दिखाई देती हैं। तथापि, उस प्राचीन काल का कोई भी ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है और इसीलिए भरताचार्य ने नाट्यशास्त्र के द्वारा संस्कृत साहित्यशास्त्र का श्रीगणेश किया, ऐसा माना जाता है।

संस्कृत साहित्यशास्त्र का विभव-काल—

भरतोत्तरकाल में संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि हो गयी। उस शास्त्ररूप प्रवाह में अनेक अन्य प्रवाह आकर मिले और उन्होंने मूल प्रवाह को परिपुष्ट बनाया। भरतोत्तरकाल में काव्य का तात्त्विक एवं व्यावहारिक दृष्टियों से नियमबद्ध, विपुल एवं ठोस विचार होने लगा। उस काल में अनेक साहित्यशास्त्रज्ञ हो गये जिनमें से मेधावी[2] नामक किसी साहित्यचिंतक का स्पष्ट निर्देश भामह के काव्यालंकार में प्राप्त होता है। भामह ने अपने पूर्ववर्ती अनेक आलंकारिकों के निर्देश अन्यैः,

१. द्रष्टव्य—Dr. P. V. Kane—History of Sanskrit Poetics, 1961, Part II, p. 333.

२. द्रष्टव्य—'त एते उपमादोषाः सप्त मेधाविनोदिताः ॥'—भामहकृत काव्यालंकार २।४०; 'यथासंख्यमथोत्प्रेक्षामलंकारद्वयं विदुः। संख्यानमिति मेधावी नोत्प्रेक्षाभिहिता क्वचित् ॥'—तत्रैव २।८८ ॥

परे, अपरे, केचित् आदि[१] शब्दों से किये हैं। काव्यादर्शकार दण्डी भी अपने पूर्वजों के ऋण का निर्देश करते हैं[२]। वामन[३], रुद्रट[४], आनंदवर्द्धन[५] आदि भरतोत्तरकालीन सभी आलंकारिक इस रिवाज का पालन करते हुए दिखाई पड़ते हैं। इसका सारांश यह है कि, भरतोत्तरकाल में संस्कृत साहित्यशास्त्र का उत्तरोत्तर विकास होता गया। इसी विकासकाल में काव्य के लक्षण, प्रयोजन, कारण, गुण, दोष, अलंकार, भेद आदि अंगों की चर्चा संपन्न हुई। इसी काल में काव्यालंकार, काव्यादर्श, काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ध्वन्यालोक, काव्यमीमांसा, काव्यकौतुक, वक्रोक्तिजीवित, दशरूपक, व्यक्तिविवेक, औचित्यविचारचर्चा आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। इसी काल में, काव्य में अलंकार ही सर्वाधिक महत्त्व के होते हैं[६], काव्य की आत्मा रीति[७] है, रस काव्य का जीवित है[८], ध्वनि काव्य की आत्मा[९] है, वक्रोक्ति काव्य का प्राणतत्त्व[१०] है,

१. द्रष्टव्य—अन्यैः-भामहकृत काव्यालंकार १।१३, १।२४, २।४; परे-तत्रैव १।१४; अपरे तत्रैव १।३१, २।६, ४।६; केचित्-तत्रैव २।२, २।९३।

२. द्रष्टव्य—तैः—काव्यादर्श १।१०; पूर्वाचार्यैः—तत्रैव २।२, ३।१०६; पूर्वसूरिभिः तत्रैव २।७।

३. वामन-काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः—केचित्-३.१.१३; एके-४-२-१८।

४. रुद्रट काव्यालंकार, तैः-२।२; आचार्यैः-१२।४।

५. आनंदवर्द्धन-ध्वन्यालोक, बुधैः-१।१; सूरिभिः-१।१३ इ० इ०।

६. 'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।'—भामह, काव्यालंकार १।१३ तथा 'अनेन वागर्थविदां अलङ्कृता विभाति नारीव विदग्धमण्डना॥' तत्रैव ३।५८।

७. 'रीतिरात्मा काव्यस्य।'—वामनकृत काव्यालंकारसूत्रवृत्ति १-२-६।

८. द्रष्टव्य-अग्निपुराण ३३६-३३ एवं, 'उक्तिचणं ते वचो, रस आत्मा…… ।' राजशेखरकृत काव्यमीमांसा, तृतीयोऽध्यायः।

९. 'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः……।'—आनंदवर्द्धन, ध्वन्यालोक १।१।

१०. द्रष्टव्य-कुन्तककृत वक्रोक्तिजीवित १।२७।

औचित्य ही काव्य का जीवितसर्वस्व[1] है, ये प्रमुख एवं मौलिक विचार-धाराएँ प्रकट हुईं। यह कालावधि खिस्ताब्द ७०० से लेकर ११०० तक फैली। संस्कृत साहित्यशास्त्र के अन्तर्गत जितनी नई कल्पनाएँ, जितने तेजस्वी विचार और जितने युगप्रवर्तक सिद्धान्त परिगणित होते हैं; उन सबों का चिंतन-मनन, प्रस्फुरण तथा आविष्करण, प्रतिपादन एवं विशदीकरण तथा मण्डन और खण्डन, इसी चार सदी की कालावधि में हुआ। अतएव हम इस कालावधि को संस्कृत साहित्यशास्त्र का विभवकाल निर्भ्रान्ततया कह सकते हैं। मेरे कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि, खिस्ताब्द ११०० के लगभग संस्कृत साहित्यशास्त्र की परंपरा खंडित हो गई। खिस्ताब्द ११०० के बाद भी मम्मट, रुय्यक, वाग्भट, हेमचन्द्र, जयदेव, विद्याधर, विश्वनाथ, भानुदत्त, रूपगोस्वामी, अप्पय्य दीक्षित, जगन्नाथ पण्डित आदि लब्धप्रतिष्ठ ग्रन्थकार हो गये हैं और उन्होंने काव्यप्रकाश, अलङ्कारसर्वस्व, काव्यानुशासन, चन्द्रालोक, एकावली, साहित्यदर्पण, रसमंजरी, रसगङ्गाधर आदि शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना की, इसमें बिल्कुल सन्देह नहीं। इन ग्रन्थों में से काव्यप्रकाश, साहित्य-दर्पण, रसगङ्गाधर प्रभृति ग्रन्थ अद्यापि प्रमाणभूत ग्रन्थ माने जाते हैं, वे अद्यापि पठन-पाठन-परम्परा में स्वीकृत हैं, इसमें भी बिल्कुल सन्देह नहीं। कहने का अभिप्राय इतना ही है कि, संस्कृत साहित्यशास्त्र अपनी ऊर्जस्वल, नूतन व क्रान्तिकारक विचाररूपी आत्मा खिस्ताब्द ११०० के आसपास खो बैठा था। वह उस समय के बाद केवल कलेवररूप में जीवित था। उपरिनिर्दिष्ट विभवकाल के अन्तिम ग्रंथकार क्षेमेन्द्र थे।

असाधारण ग्रन्थकार—

क्षेमेन्द्र ग्यारहवीं सदी के एक असाधारण ग्रन्थकार थे। उन्होंने अपनी साहित्यसंपदा के द्वारा संस्कृत वाङ्मय को विभूषित किया। उनका

---

१. 'औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम् ।'—क्षेमेन्द्रकृत औचित्यविचार-चर्चा, कारिका ५।

साहित्यिक कर्तृत्व विपुल, विविध एवं महत्त्वपूर्ण है। उनको ग्रंथरचना करने में अपार उत्साह था और परिश्रम पर उनकी अदम्य निष्ठा थी। उनका सामयिक लोकजीवन का निरीक्षण जितना सूक्ष्म एवं व्यापक था उतना ही सहृदय। इसीलिए यद्यपि उन्हें नैसर्गिक, उज्ज्वल प्रतिभा की देन प्राप्त नहीं थी, तथापि उन्होंने दिव्य तथा पौरुष उपायों के द्वारा[१] श्रीशारदा की उपासना करके बड़ी योग्यता[२] संपादित की थी। उन्होंने छंदःशास्त्र, काव्यशास्त्र, रसपूर्ण लघुकाव्य, नीत्युपदेशपरक काव्य, सारांश-काव्य, कोश इत्यादि विविध विषयों पर लगभग चालीस ग्रन्थ लिखे। यह ग्रन्थसंपदा केवल संख्याबहुल नहीं है, वह गुणबहुल भी है और इसीलिये क्षेमेन्द्र को संस्कृत साहित्यशास्त्र के विभवकाल का एक उल्लेखनीय एवं वैशिष्ट्यपूर्ण ग्रन्थकार मानना समुचित होगा। संस्कृत साहित्यशास्त्र कश्मीर में अङ्कुरित हुआ, वह वहीं ग्रन्थरूप-पुष्पों से प्रफुल्ल हुआ और उसका विकास भी वहीं हुआ। भामह, वामन, उद्भट, आनंदवर्द्धन, अभिनवगुप्त, महिमभट्ट, कुन्तक आदि सभी प्रमुख एवं श्रेष्ठ ग्रन्थकार कश्मीर के ही निवासी थे। क्षेमेन्द्र भी कश्मीरवासी थे, उन्होंने भी औचित्यसिद्धान्त की प्रतिष्ठापना करके संस्कृत साहित्यशास्त्रीय विचारों को आगे बढ़ाया। इन सब चीजों को ध्यान में रखकर हम यह कह सकते हैं कि, संस्कृत साहित्य-शास्त्र की मातृभूमिरूप कश्मीर ने क्षेमेन्द्ररूप अनर्घ्य उपहार श्रीसरस्वती के पुनीत चरणों में अर्पित किया !

'यस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च।'—

संस्कृत ग्रंथकार प्रायः अपने बारे में ज्यादा नहीं लिखते हैं। परंतु,

---

१. 'कृत्वा निश्चलदैवपौरुषमयोपायं प्रसूत्यै गिरां।
क्षेमेन्द्रेण यदर्जितं शुभफलं तेनास्तु काव्यार्थिनाम्।'—कविकण्ठाभरण ५।३।

२. 'क्षेमेन्द्रनामा तनयस्तस्य विद्वत्सपर्यया।
प्रयातः कविगोष्ठीषु नामग्रहणयोग्यताम्॥'
—भारतमंजरी, हरिवंशोपसंहार-श्लोकांक ७।

क्षेमेन्द्र इस प्रकार के 'मौनीबाबा' नहीं थे। उन्होंने अनेक[1] ग्रन्थों के उपसंहारकपर श्लोकों में स्वचरित्रविषयक निर्देश अवश्य किया है। क्षेमेन्द्र के पुत्र सोमेन्द्र ने[2] क्षेमेन्द्ररचित बोधिसत्त्वावदानकल्पलता नामक ग्रन्थ का १०८ वां पल्लव जोड़कर ग्रन्थपूर्ति की थी। उसने भी स्ववंश-विषयक निर्देश किये हैं। उनका संकलन करने से यह विदित होता है कि, कश्मीर के जयापीड़ नामक राजा के (समय खिस्ताब्द ७७९-८१३) नरेन्द्र नामक सचिव थे। उनके वंश में भोगीन्द्र नामक पुरुष का जन्म हुआ। उस 'सत्त्वनिधि' भोगीन्द्र को सिन्धु नामक पुत्र प्राप्त हुआ। उसके पुत्र का नाम था प्रकाशेन्द्र। वह इन्द्रवत् विभवशाली[3] था। वह दानधर्म में नित्य[4] तत्पर रहता था। विद्वानों का समुचित सत्कार करना व अपने बांधवों को सन्तोष[5] प्रदान करना, यह उसने अपना व्रत बना लिया था। वह अन्न, धन, भूमि, गोसंघ, कृष्णाजिन आदि वस्तुओं का दान ब्राह्मणों को बारबार[6] किया करता था। परिणामतः ब्राह्मणगण 'तुम इंद्रसदृशही हो, अन्तर इतना ही है कि इन्द्र प्रकाशहीन है, तो तुम प्रकाशसहित हो', इन शब्दों में उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा

१. द्रष्टव्य—'दशावतारचरितोपसंहारश्लोक १–५, बृहत्कथामंजरी-उपसंहारश्लोक ३१–४१, भारतमंजरी-उपसंहारश्लोक १–५, रामायणमंजरी-उपसंहारश्लोक १–७, औचित्य-विचारचर्चा-उपसंहारश्लोक १–२, कविकण्ठाभरणोपसंहारश्लोकांक ३।

२. क्षेमेन्द्रकृता 'अवदानकल्पलता'—संपादक शरच्चन्द्र दास, १८८८, प्रस्तावना श्लोक १–५।

३. 'आसीत् प्रकाशेन्द्र इति प्रकाशः काश्मीरदेशे त्रिदशेश्वरश्रीः।'—औचित्य-विचारचर्चा, उपसंहारश्लोक १।

४. 'सदा दानार्द्रहस्तेन महता भद्रमूर्तिना।
साधु कुंजरिता येन प्राप्ता कीर्तिपताकिना।'-रामायणमंजरी, उपसंहारश्लोक ४।

५. 'विद्वज्जनसपर्याप्तपर्याप्तस्वजनोत्सवः।'—तत्रैव, श्लोक ५।

६. 'विप्रेन्द्रप्रतिपादितान्नधनभूगोसंघकृष्णाजिनैः।' — दशावतारचरितोपसंहार-श्लोक २।

करते थे।[१] उसके घर पवित्र सत्र[२] अविरत चालू रहता था और ब्राह्मण भोजन में अनेकानेक ब्राह्मण सम्मिलित होते थे[३]। वह भिन्न-भिन्न याचकों की अभ्यर्थनाओं की परिपूर्ति किया करता था, जिससे वे उसे कल्पवृक्षवत्[४] मानते थे। और इतना प्रभूत दानधर्म करने वाला वह अपने को अल्पप्रद ही[५] समझता था। उसने अपने घर में एक ब्रह्मदेव-मंदिर की स्थापना की थी और उसमें देवताओं की प्रतिष्ठापना की[६] थी। वह कट्टर शिवभक्त था और अन्त में शिवजी के चरणों में ही विलीन हो गया[७]। ऐसे सधन, धर्मशील, दानशूर, सुसंस्कृत, सुजन एवं कीर्तिशाली प्रकाशेन्द्र के पुत्र थे क्षेमेन्द्र[८]। इस विवरण से पता चलता है कि, क्षेमेन्द्र धनाढ्य पिता के पुत्र थे और धन-संपन्न होते हुए भी उन्हें श्रीशारदा की उपासना में रुचि थी, यह बड़ी प्रशंसनीय बात है।

क्षेमेन्द्र की जीवनी—

क्षेमेन्द्र का जन्म कब एवं कहाँ हुआ इसके बारे में निश्चित रूप से जानकारी प्राप्त नहीं होती है। तथापि, क्षेमेन्द्र के गुरुओं में प्रधान

१. 'संपूर्णदानसन्तुष्टाः प्राहुस्तं ब्राह्मणाः सदा।
इन्द्र एवासि किन्त्वेकः प्रकाशस्ते गुणोऽधिकः॥'—भारतमंजरी, उपसंहार-श्लोक २।

२. 'अभूद्गृहे यस्य पवित्रसत्रमच्छिन्नमग्रासनमग्रजानाम्।' औचित्यविचारचर्चा-उपसंहारश्लोक १।

३. 'अगणेयमभूद् गेहे यस्य भोज्यं द्विजन्मनाम्।'—बृहत्कथामंजरी, उपसंहार-श्लोक ३२।

४. 'नानार्थिजनसंकल्पपूरणे कल्पपादपः।'—बृहत्कथामंजरी, उपसंहारश्लोक ३१।

५. 'अल्पप्रदोऽस्मीत्यभवत् स लज्जानतकन्धरः।'—तत्रैव, श्लोक ३३।

६. 'यः श्रीस्वयंभूभवने विचित्रे लेप्यप्रतिष्ठापितमातृचक्रः।'—औचित्यविचारचर्चा उपसंहारश्लोक १।

७. 'पूजयित्वा स्वयं शम्भुं प्रसरद्वाष्पनिर्झरः। गाढं दोर्भ्यां समालिंग्य यस्तत्रैव व्यपद्यत।'—बृहत्कथामंजरी, उपसंहारश्लोक ३५।

८. 'क्षेमेन्द्रनामा तनयस्तस्य विद्वत्सु विश्रुतः।'—तत्रैव श्लोक ३६।

व्यक्ति अभिनवगुप्त थे और क्षेमेन्द्र का आश्रयदाता कश्मीर का अनन्तराज नृपति था, इन प्रमाणों के आधार पर क्षेमेन्द्र-साहित्य के विवेचकों ने यह निश्चित किया है कि, क्षेमेन्द्र का जन्म खिस्ताब्द ९९० के आसपास[१] हुआ था। क्षेमेन्द्र की निधनतिथि का भी कहीं निर्णायक निर्देश नहीं मिलता है। इसलिए वह भी अनुमान का ही विषय है। क्षेमेन्द्र का देहावसान खिस्ताब्द १०६५ में हुआ, ऐसा पं० मधुसूदन कौल[२] मानते हैं। लेकिन उनका यह कथन शिथिलसा लगता है। क्योंकि क्षेमेन्द्र ने दशावतारचरित नामक अपने ग्रंथ की परिसमाप्ति खिस्ताब्द १०६६ में की[3]। इसलिए क्षेमेन्द्र की मृत्यु खिस्ताब्द १०६६ के बाद हुई ऐसा कहना ही अधिक युक्त होगा और डॉ० काणे[४] एवं डॉ० सूर्यकान्त[५] यही कहते हैं। चक्रपाल क्षेमेन्द्र का भाई था यह डॉ० सूर्यकान्त का[६] कथन ठीक नहीं है। क्योंकि एक तो क्षेमेन्द्र ने अपने भाई के नाम का निर्देश कहीं भी नहीं किया है। दूसरी बात यह है कि, क्षेमेन्द्र के पूर्वजों में से 'सिन्धु' यह नाम छोड़कर अन्य सब नाम 'इन्द्रान्त' हैं, जैसे नरेन्द्र, भोगीन्द्र, प्रकाशेन्द्र। क्षेमेन्द्र के पुत्र का नाम भी सोमेन्द्र था यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है। चक्रपाल नाम 'इन्द्रान्त' नहीं है। तीसरी बात यह है कि, क्षेमेन्द्रकृत कविकंठाभरण के जिस वाक्य का आधार देकर डॉ० सूर्यकान्त चक्रपाल को क्षेमेन्द्र का भाई मानते हैं, वह वाक्य है—

१. (अ) डॉ० सूर्यकान्त—Ksemendra Studies, 1954, Chapter I, p. 7. (आ) डॉ० काणे—History of Sanskrit Poetics, 1961, Part I, p. 266. (इ) पं० मधुसूदन कौल—देशोपदेश & नर्ममाला, 1923, Introduction, p. 20.

२. द्रष्टव्य—उपरिनिर्दिष्ट १ इ.।

३. 'एकाधिकेऽब्दे विहितश्चत्वारिंशे सकार्तिके।'-दशावतारचरितोपसंहारश्लोक ५।

४. History of Sanskrit Poetics, 1961, Part I, p. 266.

५. Ksemendra Studies, 1954, Chap. I, p. 8.

६. Ibid, pp. 8, 10, 13.

'यथा चैतद्भ्रातुश्चक्रपालस्य।' अब यह वाक्य मुक्ताकण के 'यथा रन्ध्रं...' इत्यादि उदाहरणश्लोक दिये जाने के बाद आया हुआ है। अर्थात् इस वाक्य में प्रयुक्त हुए 'एतद्' पद का अन्वय करना है मुक्ताकण शब्द के साथ। इससे यह सिद्ध होता है कि, चक्रपाल मुक्ताकण का भाई था, नकि क्षेमेन्द्र का। यदि चक्रपाल क्षेमेन्द्र का भाई होता तो क्षेमेन्द्र अपने भाई का निर्देश 'अस्मद्भ्रातुश्चक्रपालस्य' इन शब्दों में करता, जैसा कि उसने अपने उपाध्याय गङ्गक का उल्लेख औचित्यविचारचर्चा[1] में किया है। क्षेमेन्द्र अपने को 'सर्वमनीषिशिष्य[2]' कहता है, जिससे पता चलता है कि उसका अध्ययन अनेक गुरुओं की अध्यक्षता में हुआ था। क्षेमेन्द्र ने अपने गङ्गक, अभिनवगुप्त तथा सोमपाद नामक तीन गुरुओं के उल्लेख स्पष्टतया किये हैं। उनमें से गङ्गक से क्षेमेन्द्र ने किस विषय की शिक्षा प्राप्त की इसका कोई पता नहीं चलता। अभिनवगुप्त ने क्षेमेन्द्र को साहित्यशास्त्र पढ़ाया[3]। सोमपाद[4] क्षेमेन्द्र के आध्यात्मिक गुरु रहे होंगे। क्षेमेन्द्र के पिता प्रकाशेन्द्र कट्टर शैव थे, यह हम ऊपर कह आये हैं। क्षेमेन्द्र के एक गुरु अभिनवगुप्त कश्मीरी शैवदर्शन के एक प्रमुख आचार्य थे। इस प्रकार शैव पिता के पुत्र और शैव दार्शनिक के शिष्य होते हुए भी क्षेमेन्द्र अपने अनेक[5] ग्रन्थों में विष्णुस्तुति करते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि, भागवताचार्य सोमपाद का क्षेमेन्द्र पर गहरा असर पड़ा था। क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथामंजरी लिखकर खिस्ताब्द १०३७ में लेखनकार्य का श्रीगणेश किया। उस बृहत्कथामंजरी में वे

---

१. 'यथाऽस्मदुपाध्यायगङ्गकस्य।'—औचित्यविचारचर्चा, कारिका ३९।

२. द्रष्टव्य—औचित्यविचारचर्चा, उपसंहारश्लोक २।

३. 'श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्यात्साहित्यं बोधवारिधेः। आचार्यशेखरमणेर्विद्याविवृतिकारिणः।'—बृहत्कथामंजरी, उपसंहारश्लोक ३७।

४. 'श्रीमद्भागवताचार्यसोमपादाब्जरेणुभिः।'—तत्रैव, श्लोक ३८।

५. द्रष्टव्य—औचित्यविचारचर्चा, दशावतारचरित, रामायणमंजरी आदि ग्रन्थों के मङ्गलाचरण।

अपने को 'नारायणपरायण'[1] कहते हैं। क्षेमेन्द्र की यह नारायणभक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई और दशावतारचरित के रचनासमय के आसपास वे पूर्णरूप से निष्ठावन्त वैष्णव बने हुए दिखाई पड़ते हैं। इसका प्रमाण निम्नलिखित श्लोक है—

'सन्तोषो यदि किं धनैः सुखशतैः किं यद्यनायत्तता।
वैराग्यं यदि किं व्रतैः किमखिलैस्त्यागैर्विवेको यदि॥
सत्संगो यदि किं दिगन्तगमनप्रस्थानतीर्थश्रमैः।
श्रीकान्ते यदि भक्तिरप्रतिहता तत्किं समाधिक्रमैः॥[2]

और इसीलिए क्षेमेन्द्र आमरण वैष्णव रहे यह डॉ॰ सूर्यकान्त[3] का कहना ठीक मालूम पड़ता है। क्षेमेन्द्र अपने को व्यासदास[4] कहते हैं। उनके अन्तःकरण में भगवान् व्यास के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। उनकी दृष्टि से महर्षि व्यास भुवनोपजीव्य[5] कवि थे। वे व्यास को 'ज्ञाननिधि' विशेषण से सम्बोधित करते हैं। उन्होंने अपने सुवृत्ततिलक[6] में व्यासर्षि का 'नमश्छन्दोनिधानाय सुवृत्ताचारवेधसे। तपःसत्यनिवासाय व्यासायामिततेजसे॥' इन शब्दों में गौरव किया है। व्यासरचित महाभारत अन्य कवियों का एक जीविकासाधन है, ऐसा क्षेमेन्द्र का मन्तव्य है।[7] क्षेमेन्द्र ने एक व्यासाष्टकस्तोत्र की रचना भी की है। क्षेमेन्द्र का मित्र-

---

१. द्रष्टव्य—बृहत्कथामंजरी, उपसंहारश्लोक ३८।
२. दशावतारचरित, मत्स्यावतार, श्लोक १५।
३. Ksemendra Studies, 1954, p. 15.
४. 'इति श्रीप्रकाशेन्द्रात्मजव्यासदासापराख्यश्रीक्षेमेन्द्रकृता औचित्यविचारचर्चा समाप्ता।' औचित्यविचारचर्चा। कविकण्ठाभरणादि ग्रन्थों में भी ऐसे निर्देश पाये जाते हैं।
५. कविकण्ठाभरण, द्वितीय सन्धि।
६. सुवृत्ततिलक १।३।
७. 'इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते। उदयं प्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः'॥ कविकण्ठाभरण, द्वितीयः सन्धिः।

परिवार बड़ा था। उन्होंने अपने बृहत्कथामंजरी[१], भारतमंजरी[२], रामायण-मंजरी आदि ग्रन्थों के उपसंहारों में रामयशस्, देवधर, वीर्यभद्र, नक्क, सज्जनानन्द, रत्नसिंह आदि मित्रों तथा हितचिंतकों के नामनिर्देश किये हैं। उनके मित्रों में राजपुत्र भी थे। रत्नसिंह नामक राजा का पुत्र उदयसिंह क्षेमेन्द्र का शिष्य[३] था। कविकण्ठाभरण के पंचमसन्धि से पता चलता है कि कोई लक्ष्मणादित्य नामक और एक राजपुत्र क्षेमेन्द्र का शिष्य था। क्षेमेन्द्र ने कविकण्ठाभरण की पंचम सन्धि में इन दोनों राजकुमार-शिष्यों के श्लोक विचारविशदीकरण के लिये उद्धृत किये हैं, जिससे मालूम होता है कि, क्षेमेन्द्र का स्वशिष्यों के साथ सम्बन्ध बहुत सद्भावपूर्ण था। इन सब निर्देशों से ऐसा प्रतीत होता है कि, क्षेमेन्द्र भी अपने गुरु अभिनवगुप्त के समान एक श्रेष्ठ अध्यापक रहे होंगे। (अभिनवगुप्त के १२०० शिष्य थे।[४]) सारांश में, क्षेमेन्द्र कुलशील-सम्पन्न, विष्णुभक्त, व्यास-वाल्मीकि आदि ऋषियों के प्रति आदरभाव रखनेवाले, विद्याव्यसनी एवं सत्प्रवृत्त ग्रन्थकार थे।

क्षेमेन्द्र की ग्रन्थसंपदा—

क्षेमेन्द्र एक बहुप्रसू ग्रन्थकार थे। उन्होंने विविध विषयों पर लीलया लेखन किया है। उनका लोकनिरीक्षण गहन तथा व्यापक था। उनकी लेखनी बड़ी महत्त्वाकांक्षिणी और वाणी स्वभावसुबोध थी। इन्हीं के द्वारा क्षेमेन्द्र ने संस्कृत साहित्य के अनेक विभागों को अलंकृत किया। डॉ० सूर्यकान्त कहते हैं कि, क्षेमेन्द्र व्यासवाल्मीकिवत् स्फूर्तिदाता थे[५]। लेकिन उनका यह कथन अत्युक्तिपूर्ण अतएव उपेक्षणीय है। परन्तु

---

१. द्रष्टव्य—बृहत्कथामंजरी, उपसंहारश्लोक ३९ एवं ४१।
२. द्रष्टव्य—भारतमंजरी, उपसंहारश्लोक ३।
३. द्रष्टव्य—औचित्यविचारचर्चा, उपसंहारश्लोक २।
४. Minor Works of Ksemendra, 1961, Introduction, p. 2.
५. Ksemendra Studies, 1954, p. 5.

संस्कृत साहित्य के विश्व में क्षेमेन्द्र का स्थान असाधारण है[१], यह डॉ० सूर्यकान्त का कहना योग्य अतएव ग्राह्य है। क्योंकि क्षेमेन्द्र की वाणी ने संस्कृत सारस्वत की अनेक शाखाओं में अनन्यपरतंत्रतया विहार किया। वह कभी कवि के तो कभी नाटककार के, कभी तत्त्वज्ञ के तो कभी विलासी पुरुष के, कभी कोशकार के तो कभी इतिहासपण्डित के, कभी भक्त के तो कभी साहित्यविमर्शक के परिवेष में तत्कालीन सहृदयों के सामने आयी। वह सर्वतोगामी एवं सर्वरस थी। लेकिन उसने कितने ग्रन्थों की सृष्टि की यह निश्चित रूपसे कहना आज भी बड़ा कठिन काम है। क्षेमेन्द्र के अनेक ग्रन्थ आजतक प्रकाशित हो चुके हैं, और अनेक ग्रन्थ, जो कि अद्यापि अप्रकाशित हैं, हस्तलिखित स्वरूप में पाये जाते हैं। फिर भी क्षेमेन्द्र की ग्रन्थावली की संख्या की निश्चिति के विषय में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। डॉ० सूर्यकान्त एक जगह[२] कहते हैं कि क्षेमेन्द्र ने बत्तीस ग्रन्थों की रचना की और दूसरी जगह[३] क्षेमेन्द्र द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या चौंतीस देते हैं। यह चातीस संख्या सुभाषितरत्नभांडागारम्[४] के संपादक को मान्य है। डॉ० दे[५] क्षेमेन्द्र के सैंतीस ग्रंथों की सूचि देते हैं तो डॉ० काणे का कहना है कि क्षेमेन्द्र ने भारतमंजरी एवं बृहत्कथामंजरी के अतिरिक्त चालीस ग्रन्थों का प्रणयन किया।[६] क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसंग्रह के संपादकों का भी यही मत है कि, क्षेमेन्द्र ने लगभग[७] चालीस ग्रन्थों की रचना की। सारांश में हम इतना ही निश्चितरूप से कह सकते हैं कि, क्षेमेन्द्रग्रन्थों

---

१. Ksemendra Studies, 1954, p. 33.
२. Ibid, p. 1.
३. Ibid, p. 28.
४. सुभाषितरत्नभांडागारम्, १९५२, Abbreviations & Sources, p. 2.
५. History of Sanskrit Poetics, 1960, Vol. I pp. 132-133.
६. History of Sanskrit Poetics, 1961, Part I, p. 264.
७. Minor Works of Ksemendra, 1961, Introduction p. 8.

की संख्या बत्तीस से लेकर चालीस के सन्निकट है! संख्यानिर्णय करना दुष्कर है, और वह इस लेखन का प्रयोजन भी नहीं। इसलिये डॉ० दे-दत्त ग्रन्थ-सूचि ग्राह्य मानकर उसके अनुसार अब क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों का परिचय संक्षेप में दिया जाता है।

क्षेमेन्द्र-ग्रन्थावली का परिचय—

१. **अमृततरङ्ग**—देव-पूर्वदेवकृत क्षीरसागर के मंथन पर आधृत लघु-काव्य[1]। इसमें से एक पद्य कविकण्ठाभरण की पंचम संधि में (उदाहरणश्लोक ४१) उद्धृत दिखाई पड़ता है। २. **औचित्यविचारचर्चा**—औचित्य यह रससिद्ध काव्य का जीवितसर्वस्व है, इस महासिद्धान्त के प्रतिपादनपूर्वक मण्डन के लिये लिखा हुआ स्वतंत्र एवं मौलिक[2] ग्रन्थ। इस ग्रंथकी रचना कश्मीर के अनन्तराज नृपति के काल में (खिस्ताब्द १०२८-१०६३) हुई। ग्रंथ में कुल ३९ कारिकाएँ हैं और उनमें आत्मरूप औचित्यतत्त्व के विलासस्थानों का उपवर्णन किया है। क्षेमेन्द्र की दृष्टि से काव्यगत पद, वाक्य, प्रबन्धार्थ, गुण, अलंकरण, रस, क्रियापद, कारक, लिंग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात, काल, देश, कुल, व्रत, तत्त्व, सत्त्व, अभिप्राय, स्वभाव, सारसंग्रह, प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम, आशीर्वचन और काव्यांगों में औचित्य रहता है। क्षेमेन्द्र ने कारिकागत विचारों के स्पष्टी-करणार्थ कुल १०६ उदाहरणश्लोक उद्धृत किये हैं जिनमें उनके निजी पद्य ३५ हैं। ग्रंथ की रचना अन्वयव्यतिरेकपद्धति से हुई है। क्षेमेन्द्र का यह ग्रंथ बहुत महत्त्वपूर्ण है। (३) **अवसरसार**—क्षेमेन्द्रलघुकाव्य-संग्रह में इस ग्रंथ का नाम 'अवतारसार'[3] दिया गया है, वह स्पष्टतया

---

१. Minor Works of Ksemendra, 1961, Introduction p. 10.

२. 'क्षेमेन्द्र इत्यक्षयकाव्यकीर्तिश्चक्रे नवौचित्यविचारचर्चाम् ।'—औचित्यविचार-चर्चा, उपसंहारश्लोक २.

३. Minor Works of Ksemendra, 1961, Introduction, p. 11.

प्रामादिक है। इसमें का एक पद्य क्षेमेन्द्र ने अपनी औचित्यविचार-चर्चा में कर्मपदौचित्यप्रकरण में 'न तु यथा ममैवावसरसारे' इस प्रस्ताव के साथ दिया है। यह प्रायः अनन्तराजस्तुतिपरक एक लघुकाव्य है[1]। (४) **कनकजानकी**—प्रभु रामचन्द्र के वनवासोत्तर जीवन पर आधृत नाटक होगा[2]। इसके पाँच श्लोक कविकण्ठाभरण में (उदाहरणश्लोक २२, ४७, ४८, ५६, ५७) उद्धृत किये गये हैं। (५) **कलाविलास**—क्षेमेन्द्र का एक उत्कृष्ट काव्य। उपहास-उपरोधपरक इस काव्य में दंभाख्यान, लोभवर्णन, कामवर्णन, वेश्यावृत्त, कायस्थचरित, मदवर्णन, गायनवर्णन, सुवर्णकारोत्पत्ति, नानाधूर्तवर्णन एवं सकलकलानिरूपण नामक दस सर्ग हैं। कुल ५५१ श्लोकों में काव्य विभक्त है। मूलदेव नामक पुरुष इस काव्य का नायक है। यह पुरुष बड़ा कुटिल तथा चालाक है। उसकी उक्तियों से हमें पता चलता है कि, ठगी की विद्या भूतल पर अवतीर्ण होकर सन्यासी, वैद्य, गायक, स्वर्णकार, नट आदिकों में प्रविष्ट हुई है। इतना ही नहीं, वह विद्या पशुपक्षी एवं वनस्पतियों में भी घुस गई है। इस काव्य में क्षेमेन्द्र ने उपर्युक्त व्यवसायियों का बड़ा रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है, जिसे जिज्ञासु स्वयं पढ़ें। (६) **कविकण्ठाभरण**—क्षेमेन्द्र का एक अल्पविस्तृत पर अनल्पगुणी ग्रन्थ। क्षेमेन्द्र ने शिष्यों के उपदेश के लिये तथा विज्ञों की विशेष जानकारी के लिये[3] इस ग्रन्थरत्न का अनन्तराज के काल में (खिस्ताब्द १०२८-१०६३) प्रणयन किया। ग्रन्थ में कुल ५५ कारिकाएँ और ६२ उदाहरणश्लोक हैं। इस ग्रन्थ के विषय का विशेष विवरण आगे दिया जाएगा। (७) **कविकर्णिका**—क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा में इस ग्रन्थ का नामनिर्देश किया है। उससे यह अनुमान होता है कि इस ग्रन्थ में काव्य के गुण तथा दोषों का विचार

१. Minor Works of Ksemendra, 1961, Introduction, p. 11.
२. Ibid.
३. 'शिष्याणां उपदेशाय विशेषाय विपश्चिताम्।'—कविकण्ठाभरण १।२

हुआ होगा[1]। लेकिन इस ग्रन्थ के बारे में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। (८) **क्षेमेन्द्रप्रकाश**—इस ग्रंथ के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त नहीं होती है। (९) **चतुर्वर्गसंग्रह**—क्षेमेन्द्र ने शिष्यों के उपदेश के लिए और बुद्धिमानों के सन्तोष के लिए[2] यह वर्ग-संग्रह स्वरचित श्लोकों में किया। इसके धर्मप्रशंसा, अर्थप्रशंसा, काम प्रशंसा तथा मोक्षप्रशंसा नामक चार परिच्छेद हैं और कुल श्लोकसंख्या १०६ है। इसमें की मोक्षप्रशंसा सब से बढ़कर सुगम एवं सरल है। (१०) **चारुचर्या**—इसमें सदाचरण की शिक्षा देनेवाले सुबोध व सुंदर एक सौ श्लोक हैं। हर एक श्लोक की प्रथम पंक्ति में आचारतत्त्व का प्रतिपादन किया गया है और द्वितीय पंक्ति में उस आचारतत्त्व के अनुरूप ऐतिहासिक अथवा पौराणिक कथा का दृष्टान्त दिया गया है, जैसे—'न तीव्रदीर्घवैराणां मन्युं मनसि रोपयेत्। कोपेनापातयन् नन्दं चाणक्यः सप्तभिर्दिनैः॥'[3] इस ग्रन्थ के शुरू में[4] विष्णुस्तवन है। इसी ग्रन्थ के आधार पर याद्विवेदने अपनी नीतिमंजरी की रचना (समय खिस्ताब्द १४९४) की। जल्हण ने 'मुग्धोपदेश' ग्रन्थ के लेखन की प्रेरणा भी प्रायः क्षेमेन्द्र की चारुचर्या से ही पायी, ऐसा डॉ॰ कीथ्[5] का मन्तव्य है। (११) **चित्रभारत नाटक**—यह महाभारताश्रय नाटक होगा[6]। इसके

---

१. 'कृत्वापि काव्यालंकारां क्षेमेन्द्रः कविकर्णिकाम्।
तत्कलंकं विवेकं च विधाय विबुधप्रियम्॥'—औचित्यविचारचर्चा, कारिका २.

२. 'उपदेशाय शिष्याणां सन्तोषाय मनीषिणाम्।
क्षेमेन्द्रेण निजश्लोकैः क्रियते वर्गसंग्रहः॥' चतुर्वर्गसंग्रह, धर्मप्रशंसा १।२

३. चारुचर्या—श्लोक ६५.

४. 'श्रीलाभसुभगः सत्यासक्तः स्वर्गापवर्गदः।
जयतात् त्रिजगत्पूज्यः सदाचार इवाच्युतः॥' चारुचर्या—श्लोक १.

५. Dr. A. B. Keith—A History of Sanskrit Literature, 1953, p. 239.

६. Minor Works of Ksemendra, 1961, Introduction, p. 11.

दो श्लोक कविकण्ठाभरण में और एक श्लोक औचित्यविचारचर्चा में उद्धृत पाये जाते हैं। (१२) **दर्पदलन**—कुलविचार, धनविचार, विद्याविचार, रूपविचार, शौर्यविचार, दानविचार एवं तपोविचार नामक सात अध्यायों में तथा ५९६ श्लोकों में निबद्ध उपदेशपरक काव्य। क्षेमेन्द्र ने मंगलाचरण में विवेक[1] को नमस्कार किया है। इस काव्य में कुल, वित्त, श्रुत, रूप, शौर्य, दान एवं तप ये सात मदहेतु गिनाये गये हैं (दर्पदलनम्, कुलविचारः १।४) और उनकी निदर्शिका एक-एक कल्पित कथा दी गयी है। क्षेमेन्द्र का उद्दिष्ट यद्यपि नीत्युपदेश करना है, तथापि, उसका दृष्टिकोण औपरोधिक ही मालूम पड़ता है। इस काव्य से कवि की सूक्ष्म तथा व्यापक निरीक्षणशक्ति का अच्छा पता चलता है। (१३) **दशावतारचरितकाव्य**—इसमें विष्णु के मत्स्य-कूर्म-वराहप्रभृति दस अवतारों की कुल १७५९ श्लोकों में (उपसंहारपरक श्लोकपंचक अतिरिक्त) सरस स्तुति की गयी है। इस काव्य से क्षेमेन्द्र की उत्कट विष्णुभक्ति का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। भगवान् बुद्ध को विष्णु का अवतार मानकर उनका चरित्र लेखनिविष्ट करनेवाला यही आद्य काव्य है। इसकी रचना खिस्ताब्द १०६६ में हुई। (१४) **देशोपदेश**—दुर्जनवर्णन, कदर्यवर्णन, वेश्यावर्णन, कुट्टनीवर्णन, विटवर्णन, छात्रवर्णन, वृद्धभार्यावर्णन एवं प्रकीर्ण नामक ८ उपदेशों में तथा २९८ श्लोकों में (उपसंहारपरक श्लोकद्वय अतिरिक्त) निबद्ध सामाजिक टीकात्मक काव्य। लोकसुधार के[2] लिए इस काव्य की रचना हुई है। कश्मीर का भ्रष्ट राज्यशासन इस काव्य का लक्ष्य है। इसमें वैद्य, ज्योतिषी, भिक्षुक,

---

१. 'प्रशान्ताशेषविघ्नाय दर्पसर्पापसर्पणात्। सत्यामृतनिधानाय स्वप्रकाशविकासिने॥ संसारव्यतिरेकाय हतोत्सेकाय चेतसः। प्रशमामृतसेकाय विवेकाय नमो नमः॥'—दर्पदलनम्, कुलविचारः, १।१-२।

२. 'हासेन लज्जितोऽत्यन्तं न दोषेषु प्रवर्तते।
जनस्तदुपकाराय ममायं स्वयमुद्यमः॥'—देशोपदेश, दुर्जनवर्णनम् १।४।

कायस्थ, गौड़ीय विद्यार्थी आदिकों का उपहास किया गया है। काव्य अवश्य पठनीय है। (१५) **दानपारिजात**–इस ग्रंथ के बारे में कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं होती है। (१६) **नर्ममाला**–देशोपदेशसदृश उपरोधगर्भ टीका-परक काव्य। यह तीन परिहासों में तथा कुल ४०७ श्लोकों में विभक्त है। इसमें कायस्थों के अतिरिक्त श्रमणिका, मठदैशिक, सभर्तृका, वैद्य, गणक, गुरु आदिकों की भी कड़ी आलोचना की गयी है। काव्य करुणान्त है। (१७)**नीतिकल्पतरु**—डॉ॰ सूर्यकान्त के कथन के अनुसार यह व्यासरचित राजनीतिपरक ग्रंथ की व्याख्या है। यह नीतिकल्पतरु और औचित्यविचार-चर्चा में उल्लिखित नीतिकल्पलता विभिन्न ग्रंथ हैं अथवा अभिन्न यह कहना बड़ा कठिन है। (१८) **पद्यकादम्बरी**–बाणभट्ट की कादम्बरी का पद्यात्मक सारांश। इसके आठ श्लोक कविकण्ठाभरण में पाये जाते हैं (उदाहरण श्लोकांक १५,१७,२०,२४,२६,३४,३७,४५)। (१९) **पवनपंचाशिका**–पचास श्लोकों का वायुवर्णनपरक लघुकाव्य[१]। इसके पद्य सुवृत्ततिलक में पाये जाते हैं। (२०) **बृहत्कथामंजरी**—पंचम सदी के गुणाढ्य ने पैशाची प्राकृत भाषा में 'बृहत्कथा' नामक एक सप्तलक्षात्मक कथाग्रंथ लिखा था। उसीका सारांश क्षेमेन्द्र ने साढ़े सात हजार पद्यों में प्रस्तुत किया है। इसका लेखनकाल खिस्ताब्द १०३७ है। काव्य १९ लंबकों में विभक्त है, लेकिन सारांश प्रायः नीरस व शुष्क है। अतिसंक्षेप के कारण अनेक जगह दुर्बोधता उत्पन्न हुई है। काव्य अनाकर्षक व निर्जीव है, ऐसा डॉ॰ कीथ्[२] व डॉ॰ सूर्यकान्त[३] दोनों मानते हैं। (२१) **बौद्धाव-दानकल्पलता**—काव्यदृष्ट्या रसपूर्ण व धर्मदृष्ट्या बौद्धों का प्रिय काव्य। रचना १०७ पल्लवों में विभक्त। रचनासमय खिस्ताब्द १०५२। १०८ वाँ पल्लव क्षेमेन्द्रपुत्र सोमेन्द्र ने ग्रथित किया। इस ग्रन्थ से क्षेमेन्द्र का बौद्ध-

---

१. Minor Works of Ksemendra, 1961, Introduction, p.12.
२. Dr. A. B. Keith—A History of Sanskrit Literature, 1953, p. 276.
३. Dr. Sūryakānta—Ksemendra Studies, pp. 17-19.

दर्शन का गहरा अध्ययन तथा उनकी सहिष्णुवृत्ति इन दोनों का भली-भाँति परिचय मिलता है। क्षेमेन्द्र ने इस ग्रन्थ में यच्चयावत् जातक-कथाओं का संग्रह किया है। इस कार्य में वीर्यभद्र नामक एक बौद्ध आचार्य ने क्षेमेन्द्र की सहायता की, और सूर्यश्री क्षेमेन्द्र के लिपिक (Scribe) बने। खिस्ताब्द १२७२ में इस ग्रन्थ का तिब्बती भाषा में अनुवाद हुआ था। आज भी यह ग्रन्थ उस भाषा में समस्त रूप में उपलब्ध है[१]। डॉ॰ कीथ् की दृष्टि से यह ग्रन्थ विषयदृष्ट्या महत्त्वपूर्ण है, रचनादृष्ट्या नहीं[२]। (२२) भारतमंजरी[३]—व्यासकृत महाभारत ग्रन्थ का १०६६५ श्लोकों में सारांश। इसमें मूल भारत तथा हरिवंश इन दोनों का समावेश है। यद्यपि अनुष्टुप् वृत्त का प्रधानतया प्रयोग है, तथापि बीच-बीच में वसन्ततिलका, मालिनी, शार्दूलविक्रीड़ित, पृथ्वी आदि अन्य वृत्तों में भी रचना पायी जाती है। भारतान्तर्गत वनपर्व का आरण्यपर्व नाम रखा गया है; शांतिपर्व में विष्णुसहस्रनाम गद्य में ही दिये हुए हैं। क्षेमेन्द्र प्रत्येक पर्व के उपसंहार में अपने को व्यासरूप महाकवि कहते हैं। संक्षेप में महाभारतीय कथा का कथन करना यही ग्रंथकार का प्रयोजन है। क्षेमेन्द्र ने इस ग्रन्थ की रचना रामयशस् नामक अपने मित्र के अनुरोध से की। डॉ॰ सूर्यकान्त ने[४] इस ग्रन्थ की आलोचना करते हुए प्रतिपादन किया है कि, ग्रन्थ रूक्ष एवं निर्जीव है, मोटा-मोटी देखा जाय तो उसमें साहित्यसौन्दर्य कम दिखाई पड़ता है। डॉ॰ सूर्यकान्त की यह आलोचना जँचती नहीं। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रणयन खिस्ताब्द १०३७ में हुआ। इसी ग्रन्थ के कारण क्षेमेन्द्र को 'कवीन्द्रता' प्राप्त हुई। (२३) मुक्तावली-काव्य—तपस्वीवर्णनपरक

---

१. Dr. Sūryakānta—Ksemendra Studies, 1954, pp.19 20.

२. Dr. A. B. Keith—A History of Sanskrit Literature, 1953, p. 493.

३. क्षेमेन्द्रकृत भारतमंजरी, काव्यमाला नं. ६४, निर्णयसागर, १८९८।

४. Dr. Sūryakānta—Ksemendra Studies, 1954, p 17

काव्य,[१] जिसमें का एक पद्य कविकण्ठाभरण में (उदाहरणश्लोकांक ४१) पाया जाता है। (२४) **मुनिमतमीमांसा**—महर्षि व्यास के उपदेश का तात्पर्य वर्णन करनेवाला काव्य। इसके पंद्रह श्लोक औचित्यविचार-चर्चा में उदाहृत किये गये हैं। (२५) **राजावलि अर्थात् नृपावलि**—इसमें कश्मीरी राजाओं की वंशावली पद्यबद्ध लिखी गई थी। इस ग्रंथ की अनुपलब्धि संस्कृत साहित्य की बड़ी हानि है ऐसा डॉ॰ कीथ्[२] मानते हैं। (२६) **रामायणमंजरी**[३]—वाल्मीकिकृत कथा का यह सार १९८ प्रसंगों एवं ६३९१ श्लोकों में उपनिबद्ध हुआ है। इस ग्रंथ की भाषा बड़ी प्रवाहशालिनी और सुगम है। अनुष्टुप् वृत्त के अतिरिक्त वसन्ततिलका, मालिनी आदि वृत्तों में भी श्लोक पाये जाते हैं। क्षेमेन्द्र ने मंगलाचरण में विष्णु की स्तुति की है। मंगलाचरण के बाद के श्लोकों में वाल्मीकि तथा उनकी रामायण की प्रशंसा की गयी है। क्षेमेन्द्र वाल्मीकि को चक्रवर्ती कवि मानते हैं। उत्तरकांड का अन्तिम श्लोक है–'इति दुरितविरामः कीर्तिकान्ताभिरामः। सुजनहृदयरामः कोऽप्य-भूद्यः स रामः॥ प्रकृतमनुसरामः पापपाशं तरामः। सुकृतभुवि चरामस्तस्य नाम स्मरामः॥' यह काव्य केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व का है, परंतु काव्यदृष्ट्या worthless है, ऐसा अभिप्राय डॉ॰ कीथ्[४] प्रकट करते हैं, वह जँचता नहीं। (२७) **ललितरत्नमाला**—वत्सराज-रत्नावली की प्रेमकथा पर आधारित नाटक[५]। इसका एक पद्य औचित्यविचारचर्चा में उदाहृत किया गया है। (२८) **लोकप्रकाश**—क्षेमेन्द्रकालीन हिंदुओं

---

१. Minor Works of Ksemendra, 1961, Introduction, p 11.

२. Dr. A B. Keith—A History of Sanskrit Literature, 1953, p. 161

३. क्षेमेन्द्रकृत रामायणमञ्जरी, काव्यमाला नं ८३, निर्णयसागर, १९०३.

४. Dr. A. B. Keith—A History of Sanskrit Literature, 1953, p 136.

५. Minor Works of Ksemendra, 1961, Introduction, p. 11

की दिनचर्या, कश्मीर के प्रांत, व्यापारियों के लेन-देन के व्यवहार आदि विषयों की जानकारी देनेवाला कोष। बुहूलर इस ग्रंथ को व्यासदास क्षेमेन्द्र की ही रचना मानते हैं, तो वेब्र का मन्तव्य इससे भिन्न[1] है। पं० कौल[2] वेब्र से सहमत हैं, लेकिन वे कहते हैं कि, यह कृति मोगलकालीन किसी तृतीयश्रेणी के ग्रन्थकार की है, क्योंकि इसमें फारसी शब्दों की प्रचुरता है। (२९) **लावण्यवती**—इस ग्रन्थ में वासन्तिका नामक कोई गणिका अत्रिवसु नामक किसी श्रोत्रिय को अंकित करती हुई बताई गयी है। इस काव्य के छः श्लोक औचित्य-विचारचर्चा में उदाहृत किये गये हैं। (३०) **वात्स्यायनसूत्रसार**—वात्स्यायन के कामसूत्रों का संक्षेप। (३१) **विनयवल्ली**—क्षेमेन्द्र-लघुकाव्यसंग्रह के संपादक इस ग्रन्थ का नाम विनयवती[3] देते हैं, किन्तु यह गलत है। क्योंकि इसका एक श्लोक 'यथा मम विनयवल्ल्याम्' इस प्रस्ताव के साथ औचित्यविचारचर्चा में उदाहृत किया गया है। (३२) **वेतालपंचविंशति**—इस ग्रन्थ के बारे में कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं होती है। (३३) **व्यासाष्टक**—'भुवनोपजीव्य' व्यास महर्षि की स्तुतिपरक आठ श्लोक। क्षेमेन्द्र के मन में व्यासर्षि के प्रति कितनी प्रगाढ़ आदर-भावना थी, इसका ज्ञान इस अष्टक से होता है। (३४) **शशिवंश काव्य**—शशिवंश के राजाओं की कथाएँ वर्णन करनेवाला महाकाव्य, जिसके पाँच श्लोक कविकण्ठाभरण में (उदाहरणश्लोक १४,१६, २३,२५ तथा ५५) उदाहृत किये गये हैं। (३५) **समयमातृका**—रचना-काल खिस्ताब्द १०५०।[4] दामोदरगुप्त के कुट्टनीमत के पद्धति का वेश्याव्यवसायविषयक ६३५ श्लोकों का (उपसंहारपरक श्लोकचतुष्टय

१. Dr. Sūryakānta—Ksemendra Studies, 1954, p. 25
२. देशोपदेश & नर्ममाला, 1923, Introduction, p. 25.
३. Minor Works of Ksemendra, 1961, Introduction, p 12.
४ 'संवत्सरे पंचविंशे पौषशुक्लादिवासरे।'—समयमातृकोपसंहारश्लोक २।

अतिरिक्त) उपदेशपरक काव्य। इस ग्रन्थ के मंगलाचरण में कामदेव को[1] नमन किया गया है। इस काव्य के प्रथम पाँच समयों के नाम हैं चिन्तापरिप्रश्न, चरितोपन्यास, प्रदोषवेश्यालापवर्णन, पूजाधरोपन्यास तथा रागविभागोपन्यास। षष्ठ समय निर्नाम है, उसके बाद के अंतिम दो समयों के नाम हैं कामुकसमागम एवं कामुकप्राप्ति। एक वणिक्पुत्र की कलावतीकृत वंचना, यह इस काव्य का विषय है। क्षेमेन्द्र के कथन के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना सत्पक्ष[2] की रक्षा के लिए हुई है। इस ग्रन्थ के उपसंहार में क्षेमेन्द्र ने वेश्या की सत्कविभारती के साथ जो तुलना[3] की है उसको पढ़कर सहृदय उद्विग्न हो जाता है।

(३६) सुवृत्ततिलक—क्षेमेन्द्ररचित एक असाधारण शास्त्रीय ग्रन्थ। क्षेमेन्द्र ने छंदों का सौंदर्य ध्यान में रखकर इस ग्रंथ में प्रसिद्ध वृत्तों का शिष्योपदेशार्थ संग्रह किया है। ग्रंथ वृत्तावचय, गुणदोषदर्शन तथा वृत्तविनियोग नामक तीन विन्यासों के अन्तर्गत १२४ कारिकाओं में निर्मित हुआ है। क्षेमेन्द्र[4] ने इस ग्रंथ में सत्ताईस वृत्तों के लक्षणोदाहरण दिये हैं। द्वितीय विन्यास में उपर्युक्त सत्ताईस वृत्तों का गुणदोषप्रदर्शन किया गया है। तृतीय विन्यास के प्रारम्भ में शास्त्र, काव्य, शास्त्रकाव्य

---

१. 'अनंगवातलास्त्रेण जिता येन जगत्त्रयी।
विचित्रशक्तये तस्मै नमः कुसुमधन्वने ॥'—समयमातृका १।१

२. 'क्षेमेन्द्रेण सुभाषितं कृतमिदं सत्पक्षरक्षाक्षमम्।' तत्रैव, उपसंहारश्लोक ४।

३. 'सालंकारतया विभक्तिरुचिरच्छाया विशेषाश्रया
वक्रा सादरचर्वणा रसवती मुग्धार्थलब्धा परा।
आश्चर्योचितवर्णनानवनवास्वादप्रमोदार्चिता
वेश्या सत्कविभारतीव हरति प्रौढा कलाशालिनी ॥'
समयमातृकोपसंहार, श्लोक १।

४. क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों में सत्ताईस संख्या को कुछ विशेष महत्त्व दिखाई पड़ता है। क्योंकि सुवृत्ततिलक में २७ वृत्तों के लक्षणोदाहरण पाये जाते हैं, उधर औचित्यविचारचर्चा में भी २७ औचित्यस्थानों का सलक्षणोदाहरण विवेचन पाया जाता है।

तथा काव्यशास्त्र ये वाग्विस्तार के चार भेद परिगणित किये गये हैं, उसके उपरान्त भिन्न-भिन्न रचनाओं के लिए कौनसे वृत्त अनुकूल ठहरते हैं, इसका विवेचन किया गया है और अन्त में प्राचीन कवियों में से कौन कवि किस वृत्त में रचना करने में विशेष प्रवीण था, इसका भी विवरण किया गया है। क्षेमेन्द्र की दृष्टि से अभिनन्द अनुष्टुप् वृत्त में, पाणिनि उपजाति में, रत्नाकर वसंततिलका में, भवभूति शिखरिणी में, कालिदास मन्दाक्रान्ता में और राजशेखर शार्दूलविक्रीड़ित में विशेष प्रवीण थे। डॉ० कीथ्, डॉ० दे, डॉ० काणे आदि सभी विद्वानों की दृष्टि से क्षेमेन्द्र का यह लघुकाय ग्रन्थ वैशिष्ट्यपूर्ण है। क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसंग्रह के संपादकों[1]ने निम्नलिखित शब्दों में अपना अभिमत व्यक्त किया है—"सुवृत्ततिलक occupies an unique place among works on metres. In this work he has discussed for the first time the merits, flaws and proper usages of several metres. This difficult task has been very well accomplished by him. He was a pioneer in this type of work without any followers till to-day." (३७) **सेव्यसेवकोपदेश**—क्षेमेन्द्र का एक विशेषतासंपन्न लघुकाव्य। श्लोकसंख्या केवल ६१। सेव्यसेवकों के बीच के संबंध अच्छे हो जाएँ इस सद्धेतु से इस काव्य में मालिक तथा नौकरों के कर्तव्य एवं उनकी जिम्मेदारियों का विवरण किया गया है। सेव्यसेवकों के संबंध बिगड़ने का कारण सेव्य का दर्प एवं सेवक का लोभ है, यह क्षेमेन्द्र की धारणा है। क्षेमेन्द्र ने इस ग्रंथ के मंगलाचरण[2] में सन्तोष-रूप रत्न को नमन करके बड़ा औचित्य दिखलाया है।

---

१. Minor Works of Ksemendra, 1961, Introduction, p.14.

२. 'विभूषणाय महते तृष्णातिमिरहारिणे। नमः सन्तोषरत्नाय सेवाविषविनाशिने॥' सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक १।

क्षेमेन्द्र की ग्रंथावली का वर्गीकरण—

क्षेमेन्द्र की ग्रंथावली का ऊपर जो विवरण दिया है उससे क्षेमेन्द्र कितने उच्चकोटि के ग्रंथकार थे उसका पता चलता है। क्षेमेन्द्र के अमृततरङ्ग, अवसरसार, कनकजानकी, कविकर्णिका, क्षेमेन्द्रप्रकाश, चित्रभारत नाटक, दानपारिजात, नीतिकल्पतरु, पद्यकादम्बरी, पवनपंचाशिका, मुक्तावली, मुनिमतमीमांसा, राजावलि, ललितरत्नमाला, लावण्यवती, वात्स्यायनसूत्रसार, विनयवल्ली, वेतालपंचविंशति और शशिवंश इतने ग्रन्थरत्न अनुपलब्ध अथवा अप्रकाशित होने के कारण उन पर विचार नहीं किया जा सकता। लोकप्रकाश काव्य के कर्तृत्व के बारे में भी संदेह है। अवशिष्ट सत्रह ग्रन्थों का यों वर्गीकरण हो सकता है–१. **अवतारचरित्रपरक काव्य**—दशावतारचरित तथा बौद्धावदानकल्पलता; २. **आचारोपदेशपरक काव्य**—चारुचर्या एवं चतुर्वर्गसंग्रह; ३. **वित्तीय प्रश्ननिष्ठ काव्य**—सेव्यसेवकोपदेश; ४. **उपहास-उपरोधपरक काव्य**—कलाविलास, दर्पदलन, देशोपदेश तथा नर्ममाला; ५. **सामाजिक विषयनिष्ठ काव्य**—समयमातृका; ६. **शास्त्रीय ग्रन्थ**—औचित्यविचारचर्चा, कविकण्ठाभरण और सुवृत्ततिलक; ७. **सारांश-काव्य**—बृहत्कथामंजरी, भारतमंजरी और रामायणमंजरी; ८. **स्तोत्र-काव्य**—व्यासाष्टक स्तोत्र। इस वर्गीकरण से क्षेमेन्द्र की वाणी कितनी बहुविषयसमावेशिका एवं सर्वरसमयी थी, इसका अच्छी तरह से पता चलता है। क्षेमेन्द्र ने मानों 'न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला। जायते यन्न काव्याङ्गमहो भारो महान् कवेः[1] ॥' इस भामहोपदेश को कार्यान्वित किया था। क्षेमेन्द्र में 'न खलु धीमतां कश्चिद् अविषयो नाम[2]।' यह कालिदासोक्ति चरितार्थसी हो गई मालूम पड़ती है। और इसीलिये "Kṣemendra holds a unique posi-

१. भामहकृत काव्यालंकार ५-४।

२. कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चतुर्थोऽङ्कः।

tion in the history of Sanskrit Literature. He appears as poet, dramatist, rhetorician, lexicographer and historian. He has written numerous works which form important landmarks in several fields of Sanskrit Literature............ Almost every important branch of Sanskrit Literature has been enriched by the facile pen of this versatile genius. Indeed, in the whole range of Sanskrit Literature, only Bhoja and Hemacandra have tried their hand on such a variety of subiect, but Ksemendra displays a depth and originality peculiarly his own."[१] यह डॉ॰ सूर्यकान्त का अभिप्राय जँचता है। क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी तथा भारतमंजरी खिस्ताब्द १०३७ में प्रकट हुईं। उसके बाद खिस्ताब्द १०५० में समयमातृका का अवतार हुआ। तत्पश्चात् खिस्ताब्द १०५२ में बौद्धावदानकल्पलता कुसुमित हुई। बाद में सुवृत्ततिलक, कविकण्ठाभरण तथा औचित्यविचारचर्चा का प्रणयन हुआ। क्षेमेन्द्र ने खिस्ताब्द १०६६ में दशावतारचरित लिखकर अपनी लेखनी को हमेशा के लिये विश्राम दिया। एवंच, क्षेमेन्द्र का यह ग्रन्थ-रचना का उद्यम लगातार तीस वर्षों तक जारी रहा। यह त्रिदशकात्मक अमन्द अभियोग (उद्योग) देखकर सहृदय विवेचक का सिर आदर-भाव से झुक जाता है।

कविशिक्षापरक ग्रन्थ—

ऊपर हमने क्षेमेन्द्र के चरित्र तथा ग्रन्थों का परिचय करा दिया है। अब उनके कविकण्ठाभरण ग्रन्थ की ओर मुड़ना उचित होगा। लेकिन

१. Ksemendra Studies, 1954, p. 33.

उस ग्रन्थ का परिचय-परामर्श करा देने के पहले प्रस्तुत ग्रन्थ किस कोटि में (वर्ग में) पड़ता है इसपर किंचित् विचार-विमर्श करना आवश्यक है। संस्कृत साहित्यशास्त्रपरक ग्रन्थों के अनेक प्रकार हैं, जैसे साहित्यदर्पणादि ग्रंथ नाटक से लेकर सभी विषयों का परामर्श करते हैं, अन्य अनेक ग्रन्थ अपना विचारक्षेत्र सीमित रखा करते हैं। कतिपय ग्रंथों में केवल नाट्यशास्त्रीय एवं रस के विषय का ही विवेचन पाया जाता है। अन्य ऐसे कतिपय ग्रन्थ हैं जिनमें केवल अलंकारचर्चा हुई है। ध्वन्यालोक जैसे ग्रन्थों में स्वतंत्र, मूलगामी एवं युगप्रवर्तक सिद्धान्त का उपपादन पाया जाता है, तो शब्दव्यापारविचारादि ग्रंथों में शब्दशक्तिमात्र का विमर्श दिखाई पड़ता है। कतिपय ग्रंथ ऐसे भी हैं जिनमें नायकनायिकादि के भेदोपभेदों का वर्णन हुआ है। डॉ० काणेजी[1] द्वारा परिगणित इन प्रकारभेदों के अतिरिक्त कतिपय ग्रंथ ऐसे भी हैं जिनमें वर्तमान एवं भावी कवियों को काव्यरचना के बारे में कुछ व्यावहारिक सूचनाएँ दी गयी हैं। इस प्रकार के ग्रन्थों को 'कविशिक्षापरक ग्रन्थ' कहने का रिवाज़ है। यहाँ एक प्रश्न उठेगा कि क्या भामह के काव्यालंकार और दण्डी के काव्यादर्श आदि ग्रंथों में कविशिक्षा के बारे में कुछ सोचविचार नहीं किया गया है ? कविशिष्यों के उपदेश के लिए उन ग्रंथों की रचना नहीं हुई ? क्या उन ग्रंथों में 'कवि इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करें,' 'व्याकरणदुष्ट, अप्रतीत आदि शब्दों को काव्य-विन्यास में हेय मानें' इस तरह की चेतावनियाँ नहीं मिलती हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर यही देना पड़ेगा कि, 'हाँ इस प्रकार की सूचनाएँ, इस तरह के आदेश, इस पद्धति की चेतावनियाँ उन ग्रंथों में अवश्य पाई जाती हैं', क्योंकि हमें स्पष्टतया दिखाई पड़ता है कि भामह कहते हैं—'न दूषणायायं उदाहृतो विधिर्न चाभिमानेन किमु प्रतीतये।' (काव्यालंकार ४-२१), अपि च 'समासेन यथान्यायं तन्मात्रार्थप्रतीतये ॥' (तत्रैव, ५-१), तथा च

१. Dr. P. V. Kane—History of Sanskrit Poetics, 1961, Part II, pp. 345--346.

'सुजनावगमाय भामहेन ग्रथितं रक्रिलगोमिसूनुनेदम् ।' (तत्रैव, ६-६४)। दण्डी भी कहते हैं—'अतः प्रजानां व्युत्पत्ति अभिसन्धाय सूरयः ।' (काव्यादर्श, १-९)। वामन के काव्यालंकारसूत्रों में भी 'न प्रयोक्तव्यं, न विधेयम्, प्रयोज्या, अन्वेष्यः, प्रयोगाश्चिन्त्याः' ऐसे कई विध्यर्थी प्रयोग दृग्गोचर होते हैं। रुद्रट भी अपने काव्यालंकार में कहते हैं कि, यत्न-शील पुरुष अवधानपूर्वक निर्दोष काव्य की रचना करें (काव्यालंकार १-२२), मिश्र वृत्तियों की योजना करें (तत्रैव, २।३२), औचित्यज्ञ कविगण महाकाव्य में सौष्ठवपूर्ण यमकों का प्रयोग करें (तत्रैव, ३।५९)। रुद्रट की उक्तियाँ भी तो स्पष्ट आदेशरूप हैं। ध्वन्यालोक जैसे सर्वमान्य श्रेष्ठ आकरग्रन्थ में भी ऐसे कई वचन पाये जाते हैं, द्रष्टव्य—'एवं अन्येऽपि अलंकारा यथायोगं योजनीयाः' (ध्वन्यालोक, हरिदास संस्कृतग्रन्थ-माला ६६, १९५३, पृ० २१३), 'तेषु कथाश्रयेषु तावत् स्वेच्छैव न योज्या ।' (तत्रैव, पृ० ३१०), 'यत्नः कार्यः सुमतिना परिहारे विरोधिनाम् ।' (तत्रैव, ३।७३), 'तदेवं इदानीन्तनकविकाव्यनयोपदेशे क्रियमाणे, प्राथमिकां अभ्यासार्थिनां यदि परं चित्रेण व्यवहारः, प्राप्तपरिणतीनां तु ध्वनिरेव प्राधान्येन काव्यं इति स्थितं एतत् ।' (तत्रैव, पृ० ५५४), 'अनन्ता हि ध्वनेः प्रकाराः सहृदयानां व्युत्पत्तये तेषां दिङ्मात्रं कथितम् ।' (तत्रैव, पृ० ५७६)। एवं च, प्राचीनकाल के ऋषितुल्य ग्रन्थकारों ने अपने-अपने शिष्यों के लिए ही ग्रन्थों का प्रणयन किया था। तो अत्र शंका उठती है कि, ऊपर जिन्हें हम कविशिक्षापरक ग्रंथ कह आये हैं, उन ग्रन्थों में और ध्वन्यालोकादि ग्रंथों में भेद क्या रहा? और यदि भेद न हो तो ध्वन्यालोकादि ग्रन्थों को भी कविशिक्षापरक ग्रंथ क्यों न कहा जाए? इस शंका का समाधान यह है कि, वैसे तो भामह से लेकर जगन्नाथ पण्डित तक जितने भी संस्कृत साहित्यशास्त्रज्ञ हुए सभी अध्यापक थे। उदाहरणार्थ, भट्टतौत अभिनवगुप्त के गुरु थे। अभिनवगुप्त स्वयं १२०० शिष्यों के अध्यापक थे। उनके शिष्यों में क्षेमेन्द्र की भी

गणना है। स्वयं क्षेमेन्द्र उदयसिंह, लक्ष्मणादित्य आदि राजकुमारों के भी अध्यापक थे। एवं च हर एक शास्त्रज्ञ का अपना-अपना गुरुकुल तथा शिष्यवर्ग था। चिन्तनशील शास्त्रज्ञ अपने शिष्यों एवं अनुयायियों के हित के लिए शास्त्रीय ग्रंथों की रचना किया करते थे। जिन ग्रन्थों में तात्त्विक विवेचनपर भार रहता था उनकी परिगणना तात्त्विक ग्रन्थों में की जाती थी, जिनमें व्यावहारिक मार्गप्रदर्शन प्राधान्येन रहता था उनको शिक्षापरक ग्रन्थ संबोधित करते थे। ध्वन्यालोकादि ग्रन्थों से कविकण्ठाभरणादि ग्रन्थ केवल इसी दृष्टिकोण से भिन्न हैं। इतने तात्त्विक विवेचन के पश्चात् अब संस्कृत साहित्यशास्त्र के अन्तर्गत कविशिक्षापरक ग्रन्थों का संक्षेप में परिचय कर लेना उचित एवं आवश्यक है।

राजशेखर से रावजी भोड़क तक—

राजशेखरकृत काव्यमीमांसा एक उत्कृष्ट कविशिक्षापरक ग्रन्थ है। इसका रचना-समय खिस्ताब्द ९००–९२५ के लगभग पड़ता है। इस अपूर्व ग्रन्थ के संकलिपत १८ अधिकरणों में से केवल एक ही अधिकरण आज उपलब्ध है। फिर भी उस एकमात्र अधिकरण के अठारह अध्यायों में विवेचित विषयों की विविधता, अनेक मतभेदों के निर्देश, विपुल उदाहरणश्लोक एवं तात्त्विक चर्चाएँ देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। राजशेखर ने प्रारम्भ में काव्यविद्या में कौन से शास्त्रों का समावेश होता है, पौरुषेय तथा अपौरुषेय शास्त्र का अभिप्राय क्या है, शास्त्र काव्योपकारक कैसे ठहरते हैं, काव्यपुरुष की उत्पत्ति कैसे हुई, प्रतिभा का स्वरूप क्या होता है, इन विषयों पर प्रकाश डाला है। तत्पश्चात् व्युत्पत्ति व पाक किसको कहते हैं, काव्यपाक कैसे सिद्ध किया जाता है, पदवाक्यविवेक कैसे किया जाता है, वाक्य के विविध विन्यासों का समावेश काव्य में किस प्रकार किया जाए, पाठप्रतिष्ठा का क्या अर्थ है, काव्य के विषयों का चुनाव कैसे किया जाए, औरों के काव्यों में से शब्द, अर्थ तथा कल्पनाओं का 'हरण' कैसे किया जाता है, कवि को किन-किन संकेतों

एवं नियमों का पालन करना उचित है इत्यादि अनेक विषयों पर सूचनाएँ बहुत बारीकी से दी गयी हैं। लेकिन राजशेखर का यह ग्रन्थ उतना व्यवहारानुकूल भी नहीं और रचनादृष्ट्या सुव्यवस्थित भी नहीं। राजशेखर के इन दोषों का परिहार क्षेमेन्द्र ने बड़ी दक्षता से किया है और अपने कविकण्ठाभरण को आदर्श कविशिक्षापरक ग्रन्थ बनाने का सफल प्रयास किया है। अब हम इस अनुत्तम ग्रन्थ के स्वरूप-विवेचन में प्रवृत्त होंगे।

कविकण्ठाभरण-सारांश—

क्षेमेन्द्र ने स्वाभिमत विषय का प्रतिपादन 'संधि' नामक पाँच अध्यायों में विभक्त किया है। प्रथम संधि में कवित्वशक्ति प्राप्त करने के उपायों का विवेचन तथा दिग्दर्शन किया गया है। कवित्वप्राप्ति के लिए दिव्य तथा पौरुष उपाय कर्तव्य हैं। देवी सरस्वती की क्रियामातृका के जप का अनुष्ठान करना ही दिव्य प्रयत्न है। इस दिव्य प्रयत्न के स्वरूप के विशदीकरण के पश्चात् क्षेमेन्द्र ने शिष्यों का अल्पप्रयत्नसाध्य, कृच्छ्रसाध्य एवं असाध्य नामक त्रिविध वर्ग किया है और इनमें से प्रत्येक वर्ग के कवि को काव्य-निर्मिति के लिए कैसे प्रयास करना इष्ट है, उसका पथप्रदर्शन किया है। क्षेमेन्द्र का एतद्विषयक विवेचन संक्षिप्त होते हुए भी स्पष्ट एवं परिपूर्ण है। वह अपने निरूपण में तनिक भी संदिग्धता नहीं रखता है। कृच्छ्रप्रयत्नसाध्य कवि को चाहिए कि वह प्रारम्भ में अभ्यास के लिए वाक्यार्थशून्य पदरचना भी करे, इस प्रकार की सूचना करके तुरन्त वहीं क्षेमेन्द्र एक वाक्यार्थशून्य पदरचना उद्धृत करते हैं। द्वितीय सन्धि के प्रारम्भ में छायोपजीवी, पदकोपजीवी, पादोपजीवी, सकलोपजीवी और भुवनोपजीव्य नामक कवियों के पंचप्रकारों का सोदाहरण निरूपण किया गया है। उसके बाद भाषाप्रभु कवि को 'शतोपदेश' किया गया है, जिसमें कवि के खान-पान, रहन-सहन, अध्ययन-पठन, घूमना-फिरना, अवलोकन-प्रेक्षण आदि सभी क्रियाओं के बारे में

व्यावहारिक सूचनाएँ दी गयी हैं। तृतीय सन्धि का प्रधान विषय है चमत्कारनिरूपण। क्षेमेन्द्र ने प्रारम्भ में, 'जो ग्रन्थकार काव्य में चमत्कार नहीं उत्पन्न कर सकता है वह कवि नहीं है, और जिस काव्य में चमत्कार नहीं वह काव्य नहीं'[1] यह अपना सिद्धान्त उदाहरणों के द्वारा मण्डित किया है। तत्पश्चात् चमत्कार के पुरोलिखित दस प्रकारों का उद्देश करके उनके उदाहरण दिये हैं—१. अविचारितरमणीय, २. विचार्यमाणरमणीय, ३. समस्तसूक्तव्यापी, ४. सूक्तैकदेशदृश्य, ५. शब्दगत, ६. अर्थगत, ७. शब्दार्थगत, ८. अलंकारगत, ९. रसगत और १०. प्रख्यातवृत्तिगत। इस प्रकार चमत्कृति के निरूपण के पश्चात् चतुर्थ संधि में क्षेमेन्द्र काव्य के गुणदोषों के विवेचन का प्रारम्भ करते हैं। उनकी दृष्टि से शब्दनिर्दोषता, अर्थनिर्दोषता तथा रसनिर्दोषता ये तीन काव्यगुण हैं; शब्दसदोषता, अर्थसदोषता तथा रससदोषता ये तीन काव्यदोष हैं और काव्य के संभाव्य प्रकारभेद पाँच हैं; जैसे सगुणकाव्य, निर्गुणकाव्य, सदोषकाव्य, निर्दोषकाव्य तथा सगुणदोषकाव्य। क्षेमेन्द्र ने पंचम संधि के प्रारम्भ में शास्त्रीयज्ञान की महिमा गायी है और उसके बाद तर्क, व्याकरण, राजनीति, धर्मशास्त्र इत्यादि अट्ठाईस[2] शास्त्रों के ज्ञान की सोदाहरण चर्चा की है। ग्रन्थ के अन्त में क्षेमेन्द्र ने, परिश्रमशील कवि विद्वत्समाज में आत्मविश्वास के साथ विहार करें और उन्हें पुण्य की प्राप्ति हो जाए ऐसी शुभकामनाएँ प्रकट की हैं।

कविताशास्त्र—क्षेमेन्द्रोत्तर अरिसिंह एवं अमरचन्द्र नामक जैन विद्वद्द्वय ने कवितारहस्य अथवा काव्यकल्पलता नामक ग्रंथ का प्रणयन तेरहवीं सदी में किया। यह ग्रंथ (अ) छंदःसिद्धि, (ब) शब्दसिद्धि, (क) श्लेषसिद्धि और (ड) अर्थसिद्धि नामक चार प्रतानों में विभक्त

---

१. 'नहि चमत्कारविरहितस्य कवेः कवित्वम्, काव्यस्य वा काव्यत्वम्।'

२. यहाँ अट्ठाईस शास्त्रों के निर्देश किये गये हैं, वहाँ औचित्यविचारचर्चा में कुल २८ औचित्यस्थानों की परिगणना की गयी है, यह साम्य लक्षणीय है।

है। अनुष्टुप् वृत्तबद्ध रचना, प्रमुख वृत्त, पादपूरणार्थकों का प्रयोग, उसके उपाय, प्रशस्तिपरक श्लोकरचना के उपाय, नृप-सचिव-समुद्र-पर्वत-उपवन-प्रभृति के वर्णनों में कौशल, कविसमय इत्यादि विषयों का प्रतिपादन छंदःसिद्धि में हुआ है। शब्दसिद्धि प्रतान का विषय है व्युत्पत्ति, समासों के अर्थ, अनुप्रासादि की योजना, शब्द की अर्थत्रयी (वाच्य, लक्ष्य एवं व्यंग्य), आदि विचारकणिकाओं का निरूपण। श्लेषोपयोगी शब्द, श्लेष के विविध प्रकार एवं चित्रबंध इन विषयों की जानकार श्लेषसिद्धि प्रतान में मिलती है। और अर्थसिद्धि प्रतान में उपमादि अलंकारों का विवरण करके अन्त में कई प्रसिद्ध उपमानों की सूचि दी गई है। तात्पर्य यह है कि, अरिसिंह-अमरचन्द्र कविता के तंत्र को (technique) अच्छी तरह से समझाते हैं।

जयमंगल तथा विनयचंद्र की 'कविशिक्षा'

अमरचन्द्र के पूर्वकाल में जयमंगल नामक किसी शास्त्रज्ञ ने कविशिक्षापरक ग्रन्थ लिखा था। अमरचन्द्र के समकालीन कोई विनयचन्द्र नामक ग्रंथकार थे। उनकी भी इस तरह की रचना थी। लेकिन इन दोनों ग्रंथों के निर्देशमात्र[1] मिलते हैं।

कविकल्पलता और अलंकारशेखर

अमरचन्द्र-अरिसिंह का कवितारहस्य 'विबुधप्रिय' हुआ ऐसा मालूम होता है। क्योंकि देवेश्वर (चौदहवीं सदी) और केशवमिश्र ने (सोलहवीं सदी) अपने-अपने ग्रंथों की रचना के बारे में कवितारहस्य को ही आदर्शवत् माना है। देवेश्वर बहुत परप्रत्ययनेय हैं। वे स्वरचित कविकल्पलता में 'कवितारहस्य' के अनेक परिच्छेद उद्धृत कर देते हैं। केशवमिश्र देवेश्वर के समान सर्वथा अनुवादक नहीं है। उनके ग्रंथ का नाम है 'अलंकारशेखर'। उसकी रचना सोलहवीं सदी के उत्तरार्ध में

१. Dr. S. K. De—History of Sanskrit Poetics, 1960, Vol I, p. 260 & p. 280

हुई । उसमें काव्यलक्षण, प्रतिभा, रीति, उक्ति, मुद्रा, शब्दशक्ति, काव्यदोष, अलंकार आदि विषयों का विवेचन पाया जाता है । तथापि, यह समस्त विवेचन नौसिख कवि को पथप्रदर्शन करनेकी दृष्टि से ही किया हुआ है । इसलिए इस ग्रंथ का अन्तर्भाव कविशिक्षापरक ग्रंथों में करना ही उचित है ।

गंगादास की 'कविशिक्षा'

गंगादास की कविशिक्षा भी एक उल्लेखनीय ग्रन्थ है । इसमें छंदः-कथन, सामान्यशब्द, गुण, रस, अलंकार, काव्य दोष तथा समस्यापूरण इन विषयों का निरूपण पाया जाता है ।[1]

'कविकल्पलता'

राघवचैतन्य नामक कोई एक कविशिक्षापरक ग्रंथ लिखनेवाले हो गये । उनके ग्रंथ का नाम 'कविकल्पलता' था, इतनी ही जानकारी प्राप्त होती है ।[2]

'साहित्यसार'—[3]

कविशिक्षापरक ग्रंथों में ही अच्युतरायजी मोड्क के साहित्यसार की गणना करना उचित होगा । क्योंकि यद्यपि उसमें गुण, दोष, अलंकार आदि विविध विषयों का विवेचन पाया जाता है, तथापि विवेचन के पीछे की दृष्टि तथा विवेचन की पद्धति कविशिष्यों को व्यावहारिक सूचनाएँ देकर काव्यप्रवृत्त करने की ही है । इसलिए इस ग्रंथ का समावेश कविशिक्षापरक ग्रंथों में ही होगा । इस ग्रंथ की रचना शकसंवत् १७५३ (खिस्ताब्द १८३७) में हुई । ग्रन्थकार अच्युतरायजी महाराष्ट्रीय

---

१. Dr. S K De—History of Sanskrit Poetics, 1960, Vol I, pp 260-261.

२. Ibid. p. 295.

३. Ibid, pp. 263-264.

ब्राह्मण थे। उनकी माता का नाम था अन्नपूर्णा तथा पिता का नाम था नारायण। वे पंचवटी के निवासी थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ के अध्यायों का नाम 'रत्न' रखा है। मानों अलंकारशास्त्ररूप समुद्र का मंथन करके निकले हुए रत्न हैं। रत्नसंख्या है बारह और उनके नाम तथा उनमें प्रतिपादित विषय इस प्रकार हैं—१. धन्वंतरिरत्न (काव्यलक्षणविचार), २. ऐरावतरत्न (शब्दार्थशक्तिविचार), ३. इन्दिरारत्न (व्यंग्य अर्थ एवं उसकी उपयुक्तता), ४. दक्षिणावर्तकंबूरत्न (ध्वनिभेद, रसध्वनि इ०), ५. अश्ववररत्न (ध्वनि के अवान्तर गौण भेद), ६. विषरत्न (काव्यदोष), ७. गुणरत्न (काव्यगुण), ८. कौस्तुभरत्न (अर्थालंकार), ९. कामधेनु-रत्न (शब्दालंकार), १०. रंभारत्न (नायिकावर्णन), ११. चन्द्ररत्न (नायकवर्णन), १२. अमृतरत्न (उपसंहार)। डॉ० दे के[1] अनुसार अच्युतरायजी के विचार ऐतिहासिक तथा तात्त्विक दृष्टि से अपक्व तथा सदोष हैं।

ऊपर हमने कविशिक्षापरक ग्रन्थों की जो ऐतिहासिक सर्वेक्षणा (a historical survey) प्रस्तुत की है, उससे यह स्थापित होगा कि, राजशेखरकृत काव्यमीमांसा तथा क्षेमेन्द्रकृत कविकण्ठाभरण ये ही दो ग्रंथ विशेष महत्त्व के अतएव विचारणीय हैं। अन्य ग्रंथ सर्वसामान्य होने के कारण उपेक्षणीय ही हैं। कविकण्ठाभरण प्रकृत होने से यहाँ उसी की विशेषताओं का अत्र परामर्श करेंगे।

कविकण्ठाभरण की विशेषताएँ—

क्षेमेन्द्र कविकण्ठाभरण के बारे में राजशेखर का प्रचुर मात्रा में ऋणी है। काव्यमीमांसा तथा कविकण्ठाभरण इन दो ग्रन्थों में उल्लेखनीय साम्य दृष्टिगोचर होता है। जैसे, राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में पाँचवे अध्याय में कवियों के रचनाकवि, शब्दकवि आदि आठ प्रकारों का निरूपण किया हुआ मिलता है। इसी से सूचना लेकर क्षेमेन्द्र ने

---

१. Dr. S. K. De—History of Sanskrit Poetics, 1960, Vol. I, p. 264.

अपने कविकण्ठाभरण की तृतीय सन्धि में चमत्कार के समस्तसूक्तव्यापी, शब्दगत आदि दस भेद कहे हैं। नौसिख कवि अनेक शास्त्रों का अध्ययन करें यह राजशेखर का द्वितीय-अध्यायगत आदेश क्षेमेन्द्रकृत कविकण्ठाभरण की पंचम संधि में भी पाया जाता है। क्षेमेन्द्रकृत कविकण्ठाभरण की द्वितीय सन्धि में शतशिक्षा मानों काव्यमीमांसा में कविचर्यापरक बारहवें अध्याय की छाया ही है। दोनों में विषय, कल्पनाएँ एवं शब्दों तक का साम्य पाया जाता है। कविकण्ठाभरण की द्वितीय सन्धि का जो विषय है वही काव्यमीमांसा के ग्यारहवें अध्याय का विषय है। एवंच, काव्यमीमांसा तथा कविकण्ठाभरण में बिम्बप्रतिबिम्बभाव निश्चय ही है। वह होते हुए भी यह कहना आवश्यक है कि, क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ में राजशेखर का अनुवादमात्र नहीं किया, किन्तु अपनी स्वतन्त्र बुद्धि का प्रदर्शन भी अवश्य किया है। कविकण्ठाभरण के पीछे एक पृथक् व्यक्तित्व खड़ा है, यही उस ग्रन्थ की पृथगात्मता का कारण है। उसी पृथक् व्यक्तित्व के पहलुओं से अत्र परिचय कर लेना है।

(१) कुछ ग्रन्थकार विस्तारप्रिय रहते हैं, कुछ समासप्रिय। क्षेमेन्द्र उत्तरोक्त कोटि के ग्रन्थकार हैं। संक्षिप्तता क्षेमेन्द्र की सभी कृतियों की विशेषता है। उदाहरण के लिए औचित्य रससिद्ध काव्य की आत्मा है, इस युगप्रवर्तक सिद्धान्त का प्रतिपादन क्षेमेन्द्र ने केवल ३८ कारिकाओं में समाप्त किया है और वह भी २७ प्रकार के औचित्यस्थानों के सोदाहरण विवेचन से। सुवृत्ततिलक में वृत्तों का अवचय, २८ वृत्तों के गुणदोष एवं उनकी चर्चा, भिन्न-भिन्न वृत्तों का विनियोग कहाँ एवं कैसे किया जाए आदि व्यापक विषयों का विवेचन और वह भी सोदाहरण विवेचन कुल १२४ कारिकाओं में संपन्न हुआ है। क्षेमेन्द्र की यह समासप्रियता प्रस्तुत ग्रन्थ में भी सुन्दर रीति से प्रतीत होती है। यह ग्रन्थ केवल ५ सन्धि एवं ५५ कारिकाओं में विभक्त है। क्षेमेन्द्र वैचारिक दृष्टि से

राजशेखर के ऋणी हैं यह हम ऊपर कह आये हैं। लेकिन व्यास-समासविषयक नीति की दृष्टि से दोनों में अवश्य अन्तर है। राजशेखर की स्वाभाविक प्रवृत्ति विस्तार की ओर है। कल्पनाविलास, चर्चा, मतान्तरों का परामर्श आदि में राजशेखर को अधिक रुचि है। इसके विपरीत क्षेमेन्द्र इनको नहीं पसन्द करते, वे जान-बूझकर वाग्विस्तार को टालते हैं और संक्षेप में प्रभावसंपन्न विषय-प्रतिपादन करने में [एवं कथाकथन[1] करने में भी] पूर्णतया समर्थ हैं।

(२) यद्यपि क्षेमेन्द्र अपने विषय का प्रतिपादन संक्षेप में करते हैं, तो भी वे अपने प्रतिपादन में संदिग्धता न आने पाए इसकी पूरी कोशिश करते हैं। वर्ण्यविषय के विस्तार का उनको अच्छा ज्ञान रहता है। और इसीलिए उनके विवेचन में संदिग्धता नहीं घुस पाती है। इस विषय में उनकी तुलना उत्तम अध्यापक के साथ की जा सकती है। जिस प्रकार आदर्श अध्यापक अपने विषय का परिपूर्ण चिन्तन करने के बाद ही कक्षा में पदार्पण किया करता है, उसी प्रकार क्षेमेन्द्र भी स्वीकृत विषय का सांगोपांग मनन करके ही ग्रंथलेखन का कार्य शुरू करते हैं। इसलिए ग्रंथलेखन के समय समस्त ग्रन्थ का मानों मानचित्र ही उनकी दृष्टि के सामने हमेशा रहता है। उदाहरण के लिए प्रकृत ग्रन्थ के प्रारम्भ पर ही दृष्टि डालिए। क्षेमेन्द्र ने प्रारम्भ में ही स्पष्ट शब्दों में कहा है कि, हम इस ग्रन्थ में शिष्यों के उपदेश के लिए तथा विज्ञों के विशेष ज्ञान के लिए अ-कवि की कवित्वप्राप्ति आदि पाँच विषयों का पाँच सन्धियों में निरूपण करेंगे[2]। इतना अंश

१. द्रष्टव्य—गुणाढ्यकृत बृहत्कथा के सात लाख पद्यों का अपनी बृहत्कथामंजरी में केवल साढ़े सात हज़ार श्लोकों में संक्षेप करने में क्षेमेन्द्र को सफलता मिली है। लक्षश्लोकात्मक महाभारत का १०६६५ श्लोकों की भारतमंजरी में संक्षेप करने में वे समर्थ हुए हैं। चौबीस हज़ार पद्यों की रामायणीय कथा का सारकथन केवल ६६९१ श्लोकों में वे कर सके हैं।

२. कविकण्ठाभरण—१/२-४.

पढ़कर ही पाठकों को ग्रन्थगत विषय, उसका विस्तार तथा उसका स्वरूप इन बातों का अच्छा बोध हो जाता है। ग्रंथस्वरूप निश्चित कर लेने के पश्चात् क्षेमेन्द्र तुरन्त विषय के प्रतिपादन की ओर मुड़ते हैं। एवंच, विचारों की निश्चितता एवं तदनुगामी लेखन यह क्षेमेन्द्र के ग्रन्थ की द्वितीय विशेषता है।

(३) क्षेमेन्द्र का आत्म-नियंत्रण बहुत ही प्रशंसनीय है। वे स्वयं उदयसिंह प्रभृति राजपुत्रों के अध्यापक रहे यह हम ऊपर कह आये हैं। इस अध्यापकपन ने ही उनको एक तरह की आदर्श ग्रन्थ-लेखन-पद्धति सिखाई है और क्षेमेन्द्र ने उस पद्धति को पूर्णतया आत्मसात् भी किया है। हमारे इस विधान की प्रतीति पाठकों को कविकण्ठाभरण पढ़ते समय अवश्य होगी। उदाहरण के लिए देखिए कि, क्षेमेन्द्र ग्रन्थारम्भ में कवित्व की प्राप्ति के दिव्य उपायों का केवल सात-आठ[1] श्लोकों में विवेचन करते हैं और उसके बाद झट शिष्यों के वर्गीकरण के विषय का प्रतिपादन प्रारम्भ कर देते हैं। क्षेमेन्द्र को वर्गीकरण एवं विभाजन में विशेष रुचि है। वह इस ग्रन्थ में भी दिखाई पड़ती है। क्षेमेन्द्र प्रथम सन्धि में ही शिष्यों को तीन प्रकारों में पहले बाँटकर अनन्तर उनका सोपपत्तिक तथा सोदाहरण विवेचन कर देते हैं, और वह भी संक्षेप में परन्तु अपने आप में पूर्ण। क्षेमेन्द्र ने इसी आदर्श पद्धति का अनुसरण करके द्वितीय संधि में कवियों के छायो-पजीवी[2] आदि पाँच भेद माने हैं और तुरन्त ही उनका सोदाहरण विशदीकरण किया है। भाषाप्रभु कवि की शिक्षा का विवेचन समाप्त करते समय 'शिक्षाणां शतं इति उक्तं'[3] यह कहने का विस्मरण उन्हें नहीं होता है। तृतीय संधि की शुरूआत चमत्कारसिद्धान्त के निरूपण से ही होती है। वह निरूपण भी अन्वयव्यतिरेक-पद्धति से ही किया

---

१. कविकण्ठाभरण—१/६-१४.
२. तत्रैव—२/१.
३. तत्रैव—२/२२.

गया है। टालमटोल करना क्षेमेन्द्र की प्रकृति में ही नहीं बैठता और इसीलिए चमत्कारसिद्धान्त की प्रतिष्ठापना के पश्चात् वे चमत्कार के अविचारितरमणीयादि दस भेदों की गिनती करते हैं। इन दस प्रकार-भेदों पर निगाह डालने से पता चलता है कि, क्षेमेन्द्र ने यच्चयावत् संभावनाएँ ध्यान में रखकर ही यह वर्गीकरण किया है—जैसे, झट प्रतीत होनेवाला चमत्कार, विलम्ब से प्रतीत होनेवाला चमत्कार, पूरे काव्य में रहनेवाला चमत्कार, काव्य के एक अंश में रहनेवाला चमत्कार, काव्य के शब्दरूप माध्यम में रहनेवाला चमत्कार, शब्द के वाच्य में अर्थात् अर्थ में रहनेवाला चमत्कार, शब्द तथा अर्थ दोनों में रहनेवाला चमत्कार, काव्य के आभूषणों में अर्थात् अलंकारों में रहनेवाला चमत्कार, काव्य के अन्तःसौंदर्य में अर्थात् रस में रहनेवाला चमत्कार और अन्त में काव्यार्थ में अर्थात् काव्य के प्रख्यात विषय में रहनेवाला चमत्कार। इस विभाजन से पता चलेगा कि, काव्य का एक भी विचारणीय अंग क्षेमेन्द्र ने अविचारित नहीं रखा है। चतुर्थ सन्धि गुण, दोष एवं काव्यभेद इन तीन विषयों का परामर्श करती है। वहाँ भी यही दृष्टिगोचर होता है कि, गुण तथा दोषों का विवेचन परस्पर-समान्तर है—जैसे शब्दवैमल्य, अर्थवैमल्य एवं रसवैमल्य ये तीन काव्य-गुण और उतने ही तीन काव्यदोष—शब्दकालुष्य, अर्थकालुष्य एवं रसकालुष्य। जहाँ गुण का निवास होता है वहीं गुण के न रहने पर अथवा गुण की हानि के कारण दोष का निवास होता है, यह क्षेमेन्द्र का चिन्तन है और इसीलिए गुण तथा दोषों की संख्या समसमान है। क्षेमेन्द्र ने काव्यभेदों की जो पंचविध गिनती की है वह देखकर तो बीजगणित के Permutations and Combinations प्रकरण की ही याद हो आती है। जैसे वहाँ सभी संभावनाओं का ख्याल किया जाता है, वैसे यहाँ क्षेमेन्द्र ने सभी संभवों का विचार किया है। काव्य गुणपूर्ण हो सकता है इसलिए 'सगुण' प्रकार, वह निर्गुण भी हो सकता है, इसलिए 'निर्गुण' प्रकार, काव्य पूर्णतया दोषपूर्ण भी हो सकता है

इसलिए 'सदोष' प्रकार, तो काव्य पूर्णतया दोषहीन भी हो सकता है इसलिए 'निर्दोष' प्रकार, काव्य के कुछ अंश में गुण रह सकते हैं, कुछ अंश में दोष भी रह सकते हैं, इसलिए 'सगुणदोष' प्रकार, इस प्रकार काव्यभेद परिगणित हुए हैं। पंचम संधि में शास्त्रीय ज्ञान से परिचय होने पर कवि का क्या लाभ होता है इसका प्रारम्भ में ही खुलासा किया गया है कि शास्त्रपरिचय कवि को 'कविसम्राट्' बनाने में समर्थ रहता है। इस तात्त्विक भूमिका के कथन के पश्चात् भिन्न-भिन्न शास्त्रों के निर्देश किये गये हैं, जिनमें इन्द्रजाल के पश्चात् 'प्रकीर्ण' का निर्देश हुआ है। अब पद्धतिप्रिय क्षेमेन्द्र तर्कादि शास्त्रों का सोदाहरण विवेचन शुरू करते हैं और 'प्रकीर्ण' पर आ पहुँचते ही 'प्रकीर्णे चित्रपरिचयो···' ऐसा स्मरणपूर्वक खुलासा कर देते हैं। अट्ठाईस शास्त्रों के परिचय का सोदाहरण विवेचन करने के बाद वे 'इत्युक्ता रुचिरोचिता परिचयप्राप्तिर्विभागैर्गिरां'[१] ऐसा सजगता के साथ अवश्य कहते हैं। क्षेमेन्द्र की यह सुचारु ग्रंथलेखन-पद्धति (Ideally disciplined composition) पाठकों के अंतःकरण पर गहरा असर डाले विना नहीं रहती है।

(४) उदाहरण-श्लोकों की विपुलता यह भी एक कारण है जिससे क्षेमेन्द्र का विवेचन स्पष्टतर हो जाता है। क्षेमेन्द्र के औचित्यविचारचर्चा, सुवृत्ततिलक तथा कविकण्ठाभरण इन तीनों शास्त्रीय ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि, क्षेमेन्द्र अपने विचारों के स्पष्टीकरण के लिए पाठकों पर मानों उदाहरणों की वृष्टि करना बहुत पसन्द करते हैं। उन्होंने औचित्यविचारचर्चा में कुल १०६ उदाहरणश्लोक उद्धृत किये हैं, तो सुवृत्ततिलक में ९७ उदाहरणश्लोकों को उद्धृत किया है। प्रस्तुत ग्रंथ में भी वे पचीस कवियों के कुल ६२ पद्य उदाहृत करते हैं। वे केवल महत्त्वपूर्ण विचारों का उदाहरणों द्वारा स्पष्टीकरण करते हैं ऐसी

---

१. कविकण्ठाभरण ५।२।

बात नहीं। विचार चाहे छोटा हो या बड़ा हो, महत्त्व का हो या सामान्य हो, सरस उदाहरण दिये बिना क्षेमेन्द्र अगले विषय का प्रस्ताव कभी भी नहीं करते हैं। पाठकों की कल्पनाशक्ति को वे तनिक भी परेशान करना पसन्द नहीं करते। वे उदाहरणों की पराकाष्ठा किया करते हैं। और वे उदाहरण केवल प्रसिद्ध महाकवियों के ही देते हो ऐसी भी बात नहीं। उनके प्रस्तुत तथा अन्य दो ग्रन्थों में भी कालिदास, श्रीहर्ष, राजशेखर, भवभूति आदि श्रेष्ठों की पंक्ति में चन्द्रक, चक्रपाल, मालवरुद्र आदि अप्रसिद्ध या अल्पप्रसिद्ध कवि भी बैठे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। सारांश में, तत्त्वों की चर्चा उदाहरणों द्वारा सुगम, सरस व रोचक बनाने के तन्त्र को (technique) क्षेमेन्द्र ने परिश्रमपूर्वक अच्छी तरह से आत्मसात् किया है। इस तन्त्र का लाभ पाठकों को भी अवश्य मिलता है।

(५) क्षेमेन्द्र के निरूपण में केवल पारदर्शक (transparent) स्पष्टता नहीं, स्पष्टता के साथ कड़ापन भी अवश्य है। क्षेमेन्द्र कविता की समालोचना करते समय कवि की प्रतिष्ठा का ख्याल नहीं करते हैं। इस बारे में वे पूर्णतया निडर है। औचित्यविचारचर्चा में उन्होंने कालिदासादि कवियों की काव्यरचनाओं की कड़ी आलोचना[१] की है। यह भी नहीं कि वे केवल अन्य कवियों की आलोचना करते हैं। वे स्वरचित[२] काव्यों की भी उतनी ही खरप्रखर आलोचना करने में

१. द्रष्टव्य—'भगवतस्त्रिजगद्गुरोर्यदुक्तं तेनानौचित्यमेव परं प्रबन्धार्थः पुष्णाति।' —क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसंग्रहः, १९६१, पृ० १८; 'सुभटोक्तिः……दुर्गतगृहदीपशिखेव मन्दायमाना न विद्योतते।'—तत्रैव, पृ. १९; 'परमानौचित्येन चमत्कारस्तिरोहितः।'—तत्रैव, पृ० २३; 'अपवादप्रतिपादनेन स्ववचसा कविना विनाशः कृतः इत्यनुचितमेतत्।'—तत्रैव, पृ० २६।

२. 'प्रतापस्य कठोरतां अपहरन् अनौचित्यं सूचयति।'— तत्रैव, पृ० ४१; 'पराद्रींकरणं अनुचितमेव।'—तत्रैव, पृ० ५४; 'न…औचित्यकणिकां सूचयति।' —तत्रैव, पृ० ५६।

नहीं हिचकते। इसके मूल में कारण यह है कि, क्षेमेन्द्र हर एक काव्य को निर्मम, स्वपरनिरपेक्ष और शास्त्रज्ञ की दृष्टि से देख सकते हैं, उस वस्तुनिष्ठ दृष्टि से उसपर विचार कर सकते हैं और अतएव व्यक्तिनिरपेक्ष बनकर आलोचना कर सकते हैं। प्रकृत ग्रंथ में भी क्षेमेन्द्र की यह अकुतोभय वृत्ति अनेक जगह प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ देखिए, वे मालवरुद्र का 'वेल्लत्पल्लव...' इत्यादि (उदाहरणश्लोक १२) पद्य चमत्कारविरह के उदाहरणरूप में उद्धृत करते हैं। भट्टनारायण के वेणीसंहार में से एक गद्यखण्ड (कविकण्ठाभरण, चौथी संधि) उद्धृत करके उसमें रसकालुष्य है ऐसा प्रतिपादन करते हैं। असाध्यशिष्य के वर्णन में उनकी वाणी तथा लेखनी बहुत तीखी तथा धारदार बनती है। क्षेमेन्द्र की दृष्टि से 'असाध्यशिष्य' स्वभावतः पत्थर जैसा ही होता है, उसमें काव्यरस निष्पन्न होना ही असम्भव है। क्षेमेन्द्र ने इस विषय में पुरोलिखित दृष्टान्त दिये हैं—'न गर्दभो गायति शिक्षितोऽपि संदर्शितं पश्यति नार्कमन्धः।'[१] क्षेमेन्द्र कितने मुँहफट बन सकते हैं इसका यह मानों प्रमाण ही है।

(६) और एक कारण से भी क्षेमेन्द्र का यह लघुकाय ग्रंथ कविशिक्षापरक संस्कृत ग्रन्थों में वैशिष्ट्यपूर्ण बन बैठा है। क्षेमेन्द्रकृत चमत्कार का दशविध वर्गीकरण यही वह कारण है। वैसे चमत्कार की अर्थात् हृद्यता की, सौंदर्य की या चारुता की कल्पना अनूठी नहीं है। भामह से लेकर कुन्तक तक सभी क्षेमेन्द्रपूर्ववर्ती ग्रंथकारों ने चमत्कार, सौंदर्य, चारुता, वैचित्र्य आदि शब्दों के प्रयोग किये पाये जाते हैं।[२] लेकिन क्षेमेन्द्रपूर्ववर्ती किसी भी साहित्यशास्त्रकार ने चमत्कृति

१. कविकण्ठाभरण १।२३।

२. द्रष्टव्य—भामह 'कान्त' शब्द का 'काव्यालंकार' १।६ में, अलंकार एवं अलंकृति शब्दों का तत्रैव १।१३, १।३६, ५।६६, ६।२८, ६।४६ में, चारुता शब्द का १।३६, ६।२८, ६।४२ में, सौन्दर्य शब्द का १।५५ में, शोभा शब्द का १।५५, १।५९ में, मनोहर शब्द का ६।३० में प्रयोग करते हैं। दण्डी सुन्दर शब्द

का न वर्गीकरण–विभाजन किया, न सोदाहरण विवेचन ही किया। चमत्कार का अविचारितरमणीयादि दशविध वर्गीकरण करनेवाला आद्य साहित्यविद् क्षेमेन्द्र ही है। एवं च, चमत्कार का यह सूक्ष्म विचार खास क्षेमेन्द्र की ही वैचारिक देन है।

तात्पर्य यह है कि, जो और जितना कहना आवश्यक रहता है, वह और उतना क्षेमेन्द्र अवश्य कहते हैं। उसमें तनिक भी टाल-मटोल नहीं करते हैं। वे जो भी विवेचन–प्रतिपादन करते हैं, वह हमेशा सुस्पष्ट, निःसंदिग्ध, पद्धतिपूर्ण एवं परिपूर्ण रहता है। उनके निरूपण में न कहीं पुनरुक्ति पायी जाती है, न अकारण विस्तार दिखाई पड़ता है। इसीलिए वह निरूपण हमेशा ताज़ा तथा विचारणीय रहता है। क्षेमेन्द्र के समस्त विषयनिरूपण में नित्य उपार्जित सफ़ाई तथा विमलता रहती है। और इसीलिए राजशेखर की काव्यमीमांसा की अपेक्षा क्षेमेन्द्र का यह गुणाधिक कविकण्ठाभरण नौसिख कवियों का सच्चा पथप्रदर्शक है, ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा।

कई महिनों के पहले हमने क्षेमेन्द्र की औचित्यविचारचर्चा का अध्ययन शुरू किया था। वह करते समय कविकण्ठाभरण ग्रन्थ पर हमारी निगाह पड़ी। उसके प्रथम अध्ययन से हम परितुष्ट हो गये। वह ग्रन्थ हमें खूब पसन्द आया और उसी समय उसका अध्ययनपूर्ण संपादन करने का निश्चय हम कर बैठे। धीरे-धीरे काम में लगे, उत्तरोत्तर कार्य बढ़ता गया और आज प्रस्तुत रूप में वह साकार होकर पाठकों के

का 'काव्यादर्श' १।७ तथा १।२१ में भी प्रयोग करते हैं। वामन का 'सौन्दर्यमलंकारः ॥' यह सूत्र (१.१.२) तो प्रसिद्ध ही है। रुद्रट ने 'वैचित्र्य' शब्द का प्रयोग काव्यालंकार ४.३१ में किया हैं। ध्वन्यालोक में ४।१२० ऊपर की वृत्ति में चमत्कृति शब्द का स्पष्टतया प्रयोग किया गया है ('स्फुरणेयं काचिदिति सहृदयानां चमत्कृतिरुत्पद्यते।') कुन्तक ने भी चमत्कार शब्द का प्रयोग वक्रोक्तिजीवित में किया है—द्रष्टव्य—वक्रोक्तिजीवित—१।२, १।५, १।५६ इत्यादि इत्यादि।

सामने आ रहा है। आशा है कि, पाठकगण इस छोटे से ग्रंथ का यथोचित स्वागत करेंगे। इस भूमिका में तथा इसके बाद छपे हुए कविकण्ठाभरण के सविवरण अनुवाद में पाठकों को यदि लेशमात्र भी उपादेयता प्रतीत हुई, तो उसका सारा श्रेय महाकवि क्षेमेन्द्र का ही है ऐसा मैं मानूँगा।

प्रस्तुत पुस्तक में छपे मूल ग्रंथ के पाठों की निश्चिति करने में मुझे 'महाकविश्रीक्षेमेन्द्रविरचितं कविकण्ठाभरणम्,' हरिदास संस्कृत सीरीज्, क्रमांक २४, बनारस १९३३ तथा 'क्षेमेन्द्र-लघुकाव्य-संग्रहः', हैदराबाद, १९६१, इन दो संस्करणों की मदद हुई है, जिसके लिये मैं उन दोनों के संपादकों का नितान्त आभारी हूँ।

वा.के. लेले

वाराणसी, २९-१-१९६७

क्षेमेन्द्रकृत कविकण्ठाभरणम् ।

कवित्वप्राप्तिर्नाम प्रथमः सन्धिः ।

जयति जितसुधाम्भःसंभवद्वाग्भवश्री-
रथ सरससमुद्यत्कामतत्त्वानुभावा ।
तदनु परमधामध्यानसंलब्धमोक्षा
रविशशिशिखिरूपा त्रैपुरी मन्त्रशक्तिः ॥ १ ॥

भावार्थ—अमृतजल से उत्पन्न वाणी से होनेवाले विभव (ऐश्वर्य) को जीतनेवाली, बाद में सरस तथा समुत्पन्न कामतत्त्व के प्रभाव से युक्त, पश्चात् परमोच्च तेज के रूप में ध्यान करने पर मोक्ष की प्राति करानेवाली (और) सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि इन तीनों के रूपवाली त्रिपुरासंबद्ध (त्रैपुरी) मन्त्रशक्ति विजय पाती है।

टिप्पणी—सभी संस्कृत ग्रन्थकार अपने ग्रंथों का प्रारंभ 'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वाऽपि तन्मुखम् ।' नियम के अनुसार आशीर्वचन से, नमस्क्रिया से या वस्तुनिर्देश से करते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रारंभ नमस्कार से हुआ है, यह स्पष्ट है। नमस्कार भी 'तन्मानसं वाचिकं च कायिकं चेत्यपि त्रिधा। समष्टिव्यष्टिरूपेण सर्वत्रास्ति इति केचन ॥' (मानमेयरहस्यश्लोकवार्तिकम्–१९२५, पृ० ९) इस कथन के अनुसार त्रिविध होता है। ग्रंथ का निर्माण तथा अध्ययन निर्विघ्नतया संपन्न हो जाए इसलिए नमन किया जाता है। प्रस्तुत नमन में 'ऐं क्लीं सौः' इस मंत्र का स्तवन किया गया है। 'जित··श्रीः' पद ऐं के, 'सरस·· भावा' पद क्लीं के और 'परम··मोक्षा' पद सौः के द्योतक हैं। प्रस्तुत ग्रंथ का शीर्षक है 'कविकण्ठाभरणम् ।' अर्थात् कवियों के लिए कण्ठ में धारण करने योग्य आभूषण। जिस प्रकार आभूषण के छोटे-छोटे टुकड़े

परस्पर-संबद्ध होते हैं, उसी प्रकार प्रकृत ग्रन्थस्थ विषय के विभिन्न विभाग भी परस्पर-संलग्न होने के कारण प्रकृत ग्रंथ के विभागों का क्षेमेन्द्र ने 'सन्धि' यह नामकरण किया है (सन्धिः = 'परस्परं कथार्थानां सङ्घटनं'— सर्वतन्त्रसिद्धान्तपदार्थलक्षणसङ्ग्रहः, संवत् २००६, पृ० २१४)। प्रकृत प्रथम सन्धि में कवित्व की प्राप्ति के उपायों की चर्चा होने के कारण इसका नाम 'कवित्वप्राप्ति' रखा गया है।

शिष्याणामुपदेशाय विशेषाय विपश्चिताम्।
अयं सरस्वतीसारः क्षेमेन्द्रेण प्रदर्श्यते॥ २॥

भावार्थ—शिष्योंके उपदेशके लिए (और) विद्वानों के विशेष ज्ञान के लिए सरस्वती का यह सार क्षेमेन्द्र के द्वारा प्रकट किया जाता है।

टिप्पणी—शिष्य का अर्थ है शिक्षणीय अथवा उपदेशविषय। विद्वान् या सूक्ष्मदर्शी पुरुष को विपश्चित् कहते हैं। शिष्यों को सर्व-साधारण ज्ञान हो जाए और विद्वानों के ज्ञान में सूक्ष्मता आ जाए इस उद्दिष्ट से प्रेरित होकर क्षेमेन्द्रने इस ग्रन्थ की रचना की है। 'सरस्वती-सार' शब्द का अर्थ है सरस्वती का कृपाप्रसाद (अर्थात् काव्य-रचनानुकूल शक्ति) प्राप्त करने का साररूप विवेचन। इस विवेचन का अध्ययन-मनन करने पर काव्यनिर्मिति का पथ सुस्पष्ट हो जाता है। 'शिष्याणां उपदेशाय' शब्दप्रयोग क्षेमेन्द्र के अन्य ग्रन्थों में भी पाया जाता हैं—द्रष्टव्य-चतुर्वर्गसंग्रह १।२।

तत्राकवेः कवित्वप्राप्तिः शिक्षा प्राप्तगिरः कवेः।
चमत्कृतिश्च शिक्षाप्तौ गुणदोषोद्गतिस्ततः॥ ३॥
पश्चात्परिचयप्राप्तिः इत्येते पञ्च संधयः।
समुद्दिष्टाः क्रमेणैषां लक्ष्यलक्षणमुच्यते॥ ४॥ [युग्मम्]

भावार्थ—उसमें (सरस्वतीसार में) अ–कवि को कवित्वशक्ति प्राप्त होना, भाषाप्रभु कवि की शिक्षादीक्षा और शिक्षा प्राप्त होने पर

चमत्कार, उसके बाद गुण-दोषों का विवेक, पश्चात् शास्त्रों से परिचय प्राप्त करना, इस प्रकार ये पांच संधियाँ (अध्याय) नामतः निर्दिष्ट की गई हैं। क्रमशः इनके उदाहरण तथा लक्षण कहे जाएँगे।

टिप्पणी—इस श्लोकद्वय में ग्रन्थकार ने प्रस्तुत ग्रन्थ के कितने विभाग संकल्पित हैं और उनमें किन-किन विषयों का निरूपण होगा, इस बात को स्पष्ट किया है। इससे पता चलता है कि, क्षेमेन्द्र ने ग्रन्थलेखन के पहले ही ग्रंथस्थ समस्त विषय के अंगों का पूरा निश्चय कर लिया था। कहने की आवश्यकता नहीं कि, प्राचीन समय के ग्रन्थकार 'कृत्स्नदृक्' थे, न कि 'कणदृक्'! नाममात्र से वस्तु के संकीर्तन (अर्थात् कथन) को उद्देश कहते हैं। उपर्युक्त युग्म में संधिगत विषयों का नामतः कथन या निर्देश किया गया है। वस्तुतः लक्ष्य का लक्षण पहिले किया जाता है, बाद में उदाहरण दिये जाते हैं। इस दृष्टि से प्रस्तुत श्लोक में (क्रमांक ४ में) लक्षण शब्द का उल्लेख लक्ष्य शब्द के उल्लेख के पहले होना चाहिए था। लेकिन यहाँ केवल वृत्तसौकर्यार्थ उलटे उल्लेख किया गया है।

सुविभक्ति-समन्वितं बुधैर्गुणसंयुक्तममुक्तसौष्ठवैः।
रचितं पदकैः सुवर्णवत् कविकण्ठाभरणं विचार्यताम् ॥ ५ ॥

भावार्थ—सुबादि विभक्तियों से संपन्न (सुवर्णालंकार-पक्ष में सुशोभित विभागों से अर्थात् टुकड़ों से युक्त), गुणों से परिपूर्ण (अन्यत्र, डोरी में निबद्ध), सौष्ठवयुक्त पदों से रचित (अन्यत्र, सुन्दर अलंकृत पदकों से युक्त), और सुन्दर वर्णों से युक्त (अन्यत्र, सोने के) इस कविकण्ठाभरण का (अन्यत्र, कवियों के लिए कंठ में धारण करने योग्य आभूषण का) विद्वान् लोग विचार करें।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद्य में श्लेष तो हृदयंगम है ही, परन्तु इसमें क्षेमेन्द्र का आत्मप्रत्यय भी अच्छी तरह से प्रतीत होता है। अपना ग्रन्थ योग्य प्रकार से विभक्त है, वह गुणपूर्ण है, उसकी रचना सुन्दर शब्दों में

हुई है और वह कवियों को आभूषणवत् मूल्यवान् (पथप्रदर्शन की तथा विचारों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण) मालूम होगा, इन सभी बातों पर क्षेमेन्द्र का विश्वास है। और इसीलिए वे तृतीय तथा पंचम संधि के उपसंहार में क्रमशः कहते हैं—'इत्युक्त एष सविशेषचमत्कृतीनां सारः प्रकारपरभागविभाव्यमानः।'; 'इत्युक्ता रुचिरोचिता परिचयप्राप्ति-र्विभागैर्गिरां······।'

अथेदानीमकवेः कवित्वशक्तिरुपदिश्यते। प्रथमं तावद् दिव्यः प्रयत्नः, ततः पौरुषः ॥

भावार्थ—और अब अ-कविको (किन उपायों के द्वारा) कवित्व-शक्ति (प्राप्त होती है) उसका उपदेश किया जाता है। उसमें प्रथमतः दिव्य प्रयत्न का (उपदेश किया जाएगा), तत्पश्चात् पौरुष (अर्थात् पुरुषाधीन) प्रयत्न का (उपदेश किया जायगा)।

टिप्पणी—वैसे पद्यरचना करनेवाले प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं, परंतु काव्यरचना करनेवाले इनेगिने ही होते हैं। क्योंकि काव्य-रचनाक्षम शक्ति बहुत दुर्लभतर होती है। अग्निपुराणकार कहते हैं—'नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा। कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा ॥' (अग्निपुराण ३३७'३)। इसीलिए भामह भी कहते हैं कि, काव्य का निर्माण सामान्य पुरुष का कार्य नहीं है, वह प्रतिभाशाली पुरुष का ही कार्य है। और चिरस्थायी, सरस काव्य का निर्माण तो एक आध कोई प्रतिभाशाली ही कर सकता है—'काव्यं तु जायते जातु कस्यचित्प्रतिभावतः ॥' (काव्यालंकार १'५)। रुद्रट ने अपने काव्या-लंकार में (१।१५) शक्ति का पुरोलिखित शब्दों में लक्षण करके तत्पश्चात् वह शक्ति सहजा तथ उत्पाद्या ऐसी द्विविध होती है ऐसा प्रति-पादन (१।१६-१७) किया है—'मनसि सदा सुसमाधिनि विस्फुरणं अनेकधा अभिधेयस्य। अक्लिष्टानि पदानि च विभान्ति यस्यां असौ शक्तिः ॥'

तत्र दिव्यः

ॐ स्वस्त्यङ्कं स्तुमः सिद्धमन्तराद्यमितीप्सितम् ।
उद्यदूर्जप्रदं देव्या ऋॠऌॡनिगूहनम् ॥ ६ ॥

भावार्थ—उनमें से (अर्थात् दिव्य तथा पौरुष प्रयत्नों में से) दिव्य प्रयत्न—

हम अन्तःकरण में सिद्ध, आद्य होने के कारण अभीष्ट, वर्धिष्णु सामर्थ्य देनेवाले और वाग्देवता के ऋ-ॠ-ऌ-ॡ चिन्हों को छिपानेवाले ॐकाररूप स्वस्तिचिन्ह की स्तुति करते हैं ।

टिप्पणी—स्वस्त्यङ्क का अर्थ है स्वस्तिकवत् कल्याणप्रद चिन्ह । इस श्लोक में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ इतने वर्णों का निर्देश हुआ है ।

एकमैश्वर्यसंयुक्तमोजोवर्धनमौषधम् ।
अन्तरान्तः कलाखण्डगलद्घनसुधाङ्कितम् ॥ ७ ॥

भावार्थ—(वह स्वस्त्यङ्क) एकमात्र, ऐश्वर्यसंपन्न, ओजस्विता बढ़ानेवाली औषधि, परम निगूढ़ तथा चन्द्रकला के खण्ड से स्रवनेवाले गाढ़े अमृत से अङ्कित है ।

टिप्पणी—इस श्लोक में ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, क, ख, ग, घ, और ङ इन वर्णों का निर्देश पाया जाता है ।

चन्द्रोच्छलज्जलं प्रोज्झदज्ञानं टठसंयुतम् ।
डम्बरप्रौढकिरणं तथतां दधदुन्नतम् ॥ ८ ॥

भावार्थ—उसको चंद्रमा से उछलनेवाला जल प्राप्त होता है, वह अज्ञान का निरास करता है और ट तथा ठ से युक्त है । उसमें विपुल एवं प्रौढ़ किरण हैं । वह त तथा थ का आकार धारण करनेवाला होकर उन्नत है ।

टिप्पणी—इस श्लोक में च, छ, ज, झ, ञ (ज्ञान में ज्+ञ), ट, ठ, ड़, ढ़, ण, त, थ, द, ध और न इतने वर्णों का उल्लेख आया है ।

परं फलप्रदं बद्धमूलोद्भवमयं वपुः ।
रम्यं लघुवरं शर्म वर्षत् सर्वसहाक्षरम् ॥ ९ ॥

भावार्थ—वह परम फलदायक होकर उसका शरीर दृढ़मूल हुए अंकुर का बना हुआ है। वह रमणीय, अत्यन्त छोटा (या हलका), सुख की वृष्टि करनेवाला, सब कुछ सहनेवाला (और) अविनाशी है।

टिप्पणी—इस श्लोक में प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स और ह इन वर्णों का निर्देश पाया जाता है। इस प्रकार श्लोक छः से नौ तक, 'अ' से लेकर 'ह' तक की पूरी वर्णमाला निबद्ध हुई है।

एतां नमः सरस्वत्यै यः क्रियामातृकां जपेत् ।
क्षेममैन्द्रं स लभते भव्योऽभिनववाग्भवम् ॥ १० ॥

भावार्थ—देवी सरस्वती को प्रणाम। जो सत्पुरुष (यः भव्यः) इस (अर्थात् श्लोक ६ से ९ में निबद्ध) क्रियामातृका का (अर्थात् मंत्र का) जप करेगा वह अभिनव वाणी से उत्पन्न परमोच्च (ऐन्द्रं) कल्याण (क्षेमं) पाएगा।

टिप्पणी—जप के अनुष्ठान से देवी सरस्वती प्रसन्न होती है और प्रसन्न हुई देवी उपासक को आशीर्वाद देती है। आशीर्वादप्राप्त उपासक की वाणी में अभिनवता अर्थात् सुन्दरता समुत्पन्न होती है। सुन्दरतासंपन्न वाणी से प्रसूत काव्य धनादि द्वारा उत्पादकको तथा आनंदप्रदानादि द्वारा भावक के लिए भी हितप्रद बनता है, यह क्षेमेन्द्र की विचारधारा का निचोड़ है। इस श्लोक में क्षेमेन्द्र ने 'क्षेममैन्द्रं' पद के द्वारा अपना नाम भी बड़ी चतुरता से गूंथ दिया है, यह पाठकों को विदित होगा।

श्वेतां सरस्वतीं मूर्ध्नि चन्द्रमण्डलमध्यगाम् ।
अक्षराभरणां ध्यायेद् वाङ्मयामृतवर्षिणीम् ॥ ११ ॥

भावार्थ—शुभ्र, चन्द्रमण्डल के मध्य में (बीच में) रहनेवाली, अक्षरों के अर्थात् अकारादि वर्णों के (अथवा अविनाशी) आभूषणों को

धारण करनेवाली, (और) वाङ्मय (=ज्ञान) रूप अमृत की वर्षा करनेवाली सरस्वती का मस्तक में (अर्थात् बुद्धि में अथवा मन में) ध्यान किया जाए ।

टिप्पणी—यह पद्य क्षेमेन्द्र की रससंपन्न, मधुर एवं गुनगुनानेलायक कविता का उत्तम नमूना है। श्वेतां शब्द से सरस्वती का धवलविमलत्व प्रतिपादित हुआ, तो 'चन्द्रमण्डलमध्यगाम्' विशेषण सरस्वती के दिव्यत्व की ओर सङ्केत करता है। सरस्वती के गहनों का अर्थात् अक्षरों का (पदों का, वाक्यों का, वाक्यखण्डों का, काव्यों का तथा महाकाव्यों का) कभी भी नाश नहीं होता है यह कल्पना दण्डी की 'आदिराजयशोबिम्बं आदर्शं प्राप्य वाङ्मयम्। तेषां असन्निधानेऽपि न स्वयं पश्य नश्यति ॥' (काव्यादर्श १।२) इस उक्ति की याद दिलाती है। वाङ्मय अमृतवत् होता है यह कल्पना ही मनोहर है। सरस्वती के श्वेतत्व का प्रतिपादन दण्डी ने 'चतुर्मुखमुखांभोजवनहंसवधूर्मम। मानसे रमतां नित्यं सर्वशुभ्रा सरस्वती ॥' (काव्यादर्श १।१) इस पद्य में किया हुआ दृष्टिगोचर होता है। वैसे सरस्वती का धवलत्व 'या कुन्देन्दुतुषारहारधवला···' आदि प्रसिद्ध सूक्ति में भी वर्णित है।

त्रिकोणयुगमध्ये तु तडित्तुल्यां प्रमोदिनीम्।
स्वर्गमार्गोद्गतां ध्यायेत् परां अमृतवाहिनीम् ॥ १२ ॥

भावार्थ—विद्युत्सदृश, हर्षनिर्भर (और हर्षदायिनी भी), स्वर्गीय मार्ग में प्रकट होनेवाली, श्रेष्ठ और अमृत की नदीरूप (सरस्वती का) दो त्रिकोणों के बीच में ध्यान किया जाए।

टिप्पणी—यह भी एक सरसार्थपूर्ण एवं प्रासादिक पद्य है।

निर्विकारां निराकारां शक्तिं ध्यायेत् परात्पराम्।
एषा बीजत्रयीवाच्या त्रयी वाक्कामभुक्तिसूः ॥ १३ ॥

भावार्थ—विकाररहित, आकारशून्य (और) श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ शक्ति का ध्यान किया जाए। यह (शक्ति) बीजत्रयी से वाच्य (बीजमंत्र के

द्वारा प्रकट होनेवाली) है। वीजत्रयी (वीजमंत्र) वाणी, काम एवं मोक्ष को प्रसवनेवाली है।

टिप्पणी—श्लोक के पूर्वार्ध का अर्थ तो स्पष्ट ही है। क्षेमेन्द्रलघु-काव्यसंग्रह में (१९६१, पृ० ६४) वीजत्रयी एवं वाच्य शब्द विभक्त छपे हैं, हमने यहाँ तृतीया तत्पुरुष समास का ग्रहण किया है। पूर्वार्ध में प्रयुक्त शक्तिपद का अर्थ है कवित्वशक्ति अर्थात् सरस्वती। सरस्वती का कृपाप्रसाद मंत्र (श्लोक ६-९) के जपानुष्ठान से होता है (द्रष्टव्य श्लोक १०)। उस मंत्र के तीन वीजों की महिमा इस सन्धि के आद्य श्लोक में गायी गई है और इसीलिए वीजमंत्र के द्वारा कवित्वशक्ति वाच्य अर्थात् प्रकट होती है, इस अर्थ को हमने ग्रहण किया है। यह वीजत्रयी 'वाक्काममुक्तिसूः' है इसका आधार प्रथम श्लोक है ही। शक्ति के बारे में राजशेखर कहता है—"सा केवलं काव्ये हेतुः इति यायावरीयः।" (काव्यमीमांसा, चतुर्थ अध्याय।)

काव्यक्रियेच्छाङ्कुरमूलभूमिमन्विष्य विश्रान्तिलवेन मोक्षः।
अन्यावधाने मदनस्य मोक्षस्तृतीयवीजे सकलेऽस्ति मोक्षः॥ १४॥

भावार्थ—काव्य की क्रिया के (अर्थात् निर्माण के) इच्छारूप अंकुर के मूलभूत उद्गम-स्थान की (अर्थात् उपर्युक्त वीजत्रयी में 'ऐं' की) किंचित् अवधान से खोज करने पर वाणी मुक्त (अर्थात् अप्रतिहत अथवा अनन्यपरतन्त्र) हो जाती है। दूसरे पर (अर्थात् वीजत्रयी में 'क्लीं' पर) चित्त एकाग्र करने से कामवासना का मोक्ष (अर्थात् व्यक्तिगत वासनाओं का क्षय) हो जाता है। (और) समस्त तृतीय वीज पर (अर्थात् 'सौः' पर) ध्यान केन्द्रित करने से मोक्ष होता है। (अर्थात् परमोच्च आनन्द की प्राप्ति होती है।)

टिप्पणी—क्षेमेन्द्र का यह अभिप्राय दिखाई देता है कि, उत्तम काव्य की निर्मिति के लिए कवि की वाणी पूर्णरूप से बंधनातीत होनी चाहिए। उसकी व्यक्तिगत वासनाओं की क्षति होना भी आवश्यक है, तथा कवि को चाहिए कि काव्यनिर्माण के समय में उसका अन्तकरणः

आल्हादैकमय हो। इस श्लोक का सम्बन्ध प्रस्तुत सन्धि के आद्य श्लोक से है। हरिदास-संस्कृत-सीरीज्, क्रमांक २४ में प्रस्तुत श्लोक के पूर्वार्ध में 'विश्रान्तिलवेन' की जगह 'विश्रान्तिबलेन' पाठ पाया जाता है। इस श्लोक में अवधान का उल्लेख आया है। अवधान याने मन की एकाग्रता। राजशेखर की दृष्टि से समाहित चित्त ही अर्थों को देख सकता है। इसीलिए चित्त की एकाग्रता का काव्यव्यापार में महत्त्व है। (काव्यमीमांसा, चतुर्थोऽध्यायः)।

अथ पौरुषः।

तत्र त्रयः शिष्याः काव्यक्रियायामुपदेश्याः। अल्पप्रयत्नसाध्यः, कृच्छ्रसाध्यः, असाध्यश्चेति।

भावार्थ—अब पौरुष (अर्थात् पुरुषाधीन) प्रयत्न का (निरूपण करेंगे)।

उसमें काव्यनिर्मिति में उपदेशयोग्य शिष्य तीन प्रकार के होते हैं—अल्प प्रयत्नों से काव्यक्रिया में सिद्धि पानेवाले, बहुत प्रयत्नों के पश्चात् काव्यक्रिया में सिद्धि पानेवाले और बिल्कुल सिद्धि ही न पानेवाले।

टिप्पणी—वामन ने भी अपनी काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में अधिकारि-चिन्ता अवश्य की है। लेकिन वह कवियों को अरोचकी एवं सतृणाभ्य-वहारी ऐसे दो ही प्रकारों में विभक्त करता है (द्रष्टव्य—'अरोचकिनः सतृणाभ्यवहारिणश्च कवयः॥' काव्यालं० १-२-१)। राजशेखर का मन्तव्य कुछ अलग है। वह कहता है—'द्विविधं शिष्यं आचक्षते यदुत बुद्धिमान् आहार्यबुद्धिश्च। यस्य निसर्गतः शास्त्रं अनुधावति बुद्धिः स बुद्धिमान्। यस्य च शास्त्राभ्यासः संस्कुरुते बुद्धिं असौ आहार्यबुद्धिः।···तयोर्बुद्धिमान् शुश्रूषते शृणोति गृह्णीते धारयति विजानाति ऊहतेऽपोहति तत्त्वं चाभि-निविशते। आहार्यबुद्धेरप्येत एव गुणाः किन्तु प्रशास्तारं अपेक्षन्ते।··· ताभ्यां अन्यथाबुद्धिर्दुर्बुद्धिः। तत्र बुद्धिमतः प्रतिपत्तिः। स खलु सकृद-भिधानप्रतिपन्नार्थः कविमार्गं मृगयितुं गुरुकुलं उपासीत। आहार्यबुद्धेस्तु

द्वयं अप्रतिपत्तिः सन्देहश्च। स खलु अप्रतिपन्नमर्थं प्रतिपत्तुं सन्देहं च निराकर्तुं आचार्यानुपतिष्ठेत। दुर्बुद्धेस्तु सर्वत्र मतिविपर्यास एव। स हि नीलीमेचकितसिचयकल्पोऽनाधेयगुणान्तरत्वात्तं यदि सारस्वतोऽनुभावः प्रसादयति···॥' (काव्यमीमांसा, चतुर्थोऽध्यायः।) क्षेमेन्द्रवर्णित अल्पप्रयत्नसाध्य का समावेश हम राजशेखर द्वारा प्रतिपादित बुद्धिमान् शिष्य में कर सकते हैं, कृच्छ्रसाध्य का आहार्यबुद्धि-शिष्य में और असाध्य का दुर्बुद्धि-शिष्य में कर सकते हैं। दुर्बुद्धि-शिष्य के बारे में राजशेखर की उपरिनिर्दिष्ट उक्ति क्षेमेन्द्र की 'स्फुरति जडधियां श्रीशारदा साधनेन॥' (कविकण्ठाभरण १।२४) इस उक्ति से तुलनीय है।

तत्र प्रथमः।

कुर्वीत साहित्यविदः सकाशे श्रुतार्जनं काव्यसमुद्भवाय।
न तार्किकं केवलशाब्दिकं वा कुर्याद् गुरुं सूक्तिविकासविघ्नम्॥१५॥

भावार्थ—(उत्तम) काव्य के निर्माण के लिए शिष्य को चाहिए कि वह साहित्यशास्त्र को जाननेवाले (गुरु के) संनिध बैठकर ज्ञान की प्राप्ति करे। किन्तु उत्तम काव्य के विकास में विघ्नरूप ठहरनेवाले किसी तार्किक को अथवा केवल शब्दज्ञानी वैयाकरण को (वह शिष्य) अपना गुरु (कदापि) न करे।

टिप्पणी—भामह कहते हैं कि, 'शब्दाभिधेये विज्ञाय कृत्वा तद्विदुपासनम्।' (काव्यालंकार १-१०)। दण्डी श्रुत का महत्त्व-प्रतिपादन इन शब्दों में करते हैं—'श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्।' (काव्यादर्श १-१०४)। वामन भी इस विषय में कहते हैं—'काव्योपदेशगुरुशुश्रूषणं वृद्धसेवा॥' (काव्यालंकार-सूत्रवृत्तिः १-३-१४)। इस विषय के बारे में राजशेखर के वचनों को हम ऊपर उद्धृत कर ही आये हैं।

विज्ञातशब्दागमनामधातुश्छन्दोविधाने विहितश्रमश्च।
काव्येषु माधुर्यमनोरमेषु कुर्यादखिन्नः श्रवणाभियोगम्॥१६॥

भावार्थ—जिसने शब्दशास्त्र में (अर्थात् व्याकरण में) नाम, धातु (आदि का) सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया है, और जिसने छंदोरचना में बहुत परिश्रम किये हैं वह, माधुर्य के कारण रमणीय बने काव्यों के श्रवण का उद्योग अनलस होकर करे ।

टिप्पणी—क्षेमेन्द्र की इस उक्ति की और शास्त्रकारों की निम्नलिखित उक्तियों से तुलना की जा सकती है—

'शब्दश्छन्दोभिधानार्था इतिहासाश्रयाः कथाः । लोको युक्तिः कलाश्चेति मन्तव्या काव्यगैर्ह्यमी ॥' (भामह—काव्यालंकार १।९) । 'शब्दस्मृत्यभिधानकोषच्छन्दोविचितिकलाकामशास्त्रदण्डनीतिपूर्वा विद्याः ॥' (वामनकृत काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः—१-३-३) । 'छन्दोव्याकरणकलालोकस्थितिपदपदार्थविज्ञानात् । युक्तायुक्तविवेको व्युत्पत्तिरियं समासेन ॥' (रुद्रटकृत काव्यालंकार १-१८) ।

गीतेषु गाथास्वथ देशभाषाकाव्येषु दद्यात् सरसेषु कर्णम् ।
वाचां चमत्कारविधायिनीनां नवार्थचर्चासु रुचिं विदध्यात् ॥१७॥

भावार्थ—वह (शिष्य) गीत, गाथा (लोकगीत) तथा देशी भाषाओं में (अर्थात् प्राकृतों में) निबद्ध रसपूर्ण काव्यों को अवधानपूर्वक सुने । (वह) चमत्कार को (अर्थात् सुन्दरता को) प्रकट करनेवाली उक्तियों में अभिनव अर्थ की खोज के लिए प्रवृत्त चर्चाओं में रुचि रखे ।

रसे रसे तन्मयतां गतस्य गुणे गुणे हर्षवशीकृतस्य ।
विवेकसेकस्वकपाकभिन्नं मनः प्रसूतेऽङ्कुरवत् कवित्वम् ॥१८॥

भावार्थ—विविध रसों के आस्वादन में निमग्न और भिन्न-भिन्न हर्षद गुणों से आकृष्ट कवि का मन विवेक के सिंचन के द्वारा परिपक्व होकर उछलता है तथा भीतर पके अङ्कुर के समान कवित्व का निर्माण करता है ।

टिप्पणी—क्षेमेन्द्र की दृष्टि से काव्यरचना को गुणदोषादि के विवेक की मदद अवश्य अपेक्षित है । अच्छे काव्य का निर्माण काव्या-

नुकूल विषय के दर्शन के बाद तुरन्त नहीं होता, किन्तु विषयदर्शन के अनन्तर कवि के मन में उस विषय का चिन्तन-मनन होता है, उसके प्रकटीकरण की योजना निश्चित हो जाती है, शब्दों तथा कल्पनाओं का चुनाव होता है और इतनी लंबी-चौड़ी प्रक्रिया के बाद काव्य की सृष्टि होती है। क्षेमेन्द्र का यह विचार वर्डस्वर्थ के 'Poetry is a spontaneous overflow of powerful feelings taking its origin from the emotion recollected in tranquillity", इस विचार से बहुत मिलता-जुलता है।

अथ द्वितीयः।

पठेत्समस्तान्किल कालिदासकृतप्रबन्धानितिहासदर्शी।
काव्याधिवासप्रथमोद्गमस्य रक्षेत्पुरस्तार्किकगन्धमुग्रम् ॥१९॥

भावार्थ—अब दूसरे प्रकार के (अर्थात् कृच्छ्रसाध्य) शिष्य को उपदेश करते हैं—

इतिहास का अध्येता बनकर वह कालिदास के लिखे हुए यच्चयावत् प्रबन्धों का अध्ययन करे। वह काव्य के अधिवास के अभी-अभी प्रसूत या ताज़ा सुगन्धि का तर्कशास्त्र के उग्र गंध से बचाव करे।

टिप्पणी—निबन्ध-प्रबन्धादि शब्दों का प्रयोग प्रायः दीर्घरचना के अर्थ में होता है (द्रष्टव्य-भामहकृत काव्यालंकार १।१०)। कालिदास के काव्य तो प्रख्यात ही हैं, लेकिन राजशेखर की काव्यमीमांसा से पता चलता है कि, कालिदास नामक कोई आलोचक भी रहा है (द्रष्टव्य—काव्यमीमांसा, चतुर्थोऽध्यायः)। इसलिए यहाँ के प्रबन्ध शब्द से 'काव्यकृतियाँ' तथा 'शास्त्रीय ग्रंथ' इस अर्थ को ग्रहण करना उचित होगा। कालिदास के समस्त प्रबन्धों के अध्ययन का आदेश विशेष ध्यान देनेयोग्य है। तार्किकों का निषेध भी लक्षणीय है।

महाकवेः काव्यनवक्रियायै तदेकचित्तः परिचारकः स्यात्।
पदे च पादे च पदावशेषसंपूरणेच्छां मुहुराददीत ॥२०॥

भावार्थ—अभिनव काव्य के निर्माण के लिए वह (शिष्य) महाकवि की परिचर्या एकाग्रचित्त से करे। तथा च पद की और पाद की पूर्ति पद के अवशेष के द्वारा करने की इच्छा बारबार करे।

अभ्यासहेतोः पदसंनिवेशैर्वाक्यार्थशून्यैर्विदधीत वृत्तम्।
श्लोकं परावृत्तिपदैः पुराणं यथास्थितार्थं परिपूरयेच्च ॥२१॥

भावार्थ—वह अभ्यास के हेतु वाक्यार्थ से (पदसमूह के अर्थ से) रहित पदों के संनिवेशों के द्वारा वृत्त की रचना करे। और एक आध पुराने ही श्लोक के पदों में हेरफेर करके उसके मूल अर्थ को कायम रखकर परिपूर्ति करे।

टिप्पणी—इस श्लोक में दिया हुआ आदेश प्रस्तुत ग्रंथ के कविशिक्षापरक होने की ओर स्पष्टतया संकेत करता है। इसीलिए इस ग्रंथ का वर्णन 'काव्यरचना-स्वयं-शिक्षक' करना उचित होगा।

तत्र वाक्यार्थशून्यं यथा—

१. 'आनन्दसंदोहपदारविन्दकुन्देन्दुकन्दोदितबिन्दुवृन्दम्।
इन्दिन्दिरान्दोलितमन्दमन्दनिष्यन्दनन्दन्मकरन्दवन्द्यम् ॥'

भावार्थ—उसमें वाक्यार्थरहित पदसंनिवेश का उदाहरण इस प्रकार है—

प्रचुर आनन्द देनेवाले चरणकमल, चन्द्रमासदृश शुभ्र कुन्दपुष्पों से उदित बूँदों का समूह, बड़े भँवरे के द्वारा धीरे-धीरे आन्दोलित, प्रवाह के कारण आनन्द देनेवाला, मकरन्द के कारण वन्द्य।

टिप्पणी—ऊपर के शब्द परस्पर-संबद्ध न होने के कारण उनके समूह से कोई वाक्य सिद्ध नहीं होता है और इसलिए यह पदरचना वाक्यदृष्ट्या अर्थशून्य है।

परावृत्तिपदैर्यथा—

२. 'वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥' [रघुवंशम् १।१]

३. 'वाण्यर्थाविव संयुक्तौ वाण्यर्थप्रतिपत्तये।
जगतो जनकौ वन्दे शर्वाणीशशिशेखरौ ॥'

भावार्थ—पदों के हेरफेर के द्वारा रचित श्लोक का उदाहरण इस प्रकार है—

शब्द और अर्थ के यथार्थ-ज्ञान के लिए शब्द एवं अर्थ के समान संयुक्त पार्वती तथा परमेश्वर इन दोनों को अर्थात् संसार के मातापिता को मैं अभिवन्दन करता हूँ।

टिप्पणी—कालिदास की मूल रचना का ही अर्थ पदों की परावृत्ति करके रचे हुए श्लोक में है। लेकिन उसकी शब्दरचना मूल श्लोकगत शब्दरचना की अपेक्षा भिन्न है। क्षेमेन्द्र ने ऊपर की २१वीं कारिका में नियम का निरूपण किया है, यहाँ तुरन्त उसका उदाहरण देकर स्पष्टीकरण कर दिया है। इससे क्षेमेन्द्र कितने व्यवस्थानुपालक थे इसका पता चलता है।

अथ तृतीयः।

यस्तु प्रकृत्याऽश्मसमान एव कष्टेन वा व्याकरणेन नष्टः।
तर्केण दग्धोऽनलधूमिना वाऽप्यविद्धकर्णः सुकविप्रबन्धैः ॥२२॥
न तस्य वक्तृत्वसमुद्भवः स्याच् छिक्षाविशेषैरपि सुप्रयुक्तैः।
न गर्दभो गायति शिक्षितोऽपि संदर्शितं पश्यति नार्कमन्धः ॥२३॥

भावार्थ—परन्तु जो स्वभाव से पत्थर के समान ही है, अथवा (जो) कष्टदायक व्याकरण से (अर्थात् व्याकरण के अध्ययन से) जर्जरित हुआ है, अथवा (जो) तर्कशास्त्र की अग्नि से दग्ध हुआ है, अथवा जिसकी श्रवणेन्द्रियाँ सत्कवियों के काव्यों के (अर्थात् काव्य-पठन-श्रवण आदिकों के) द्वारा सच्छिद्र (अर्थात् सुसंस्कृत) नहीं हुई हैं, उसमें काव्य का निर्माण (कदापि) नहीं होगा, चाहे उसपर विशेष प्रकार की शिक्षा के कितने भी अच्छे प्रयोग किये जाएँ। गदहा कितना भी पढ़ाया गया हो, गा नहीं सकता; अन्धे को यदि सूर्य बतलाया जाए, वह देख नहीं सकता।

टिप्पणी—क्षेमेन्द्रोक्तियों का तात्पर्य यह है कि, शिष्य का अविकार्य स्वभाव, उसका व्याकरणाध्ययन तथा तर्कपाण्डित्य और अन्यों के काव्यों

के श्रवणपठन का अभाव ये सभी बातें काव्यनिर्माण में विक्षेप डालनेवाली होती हैं। जो शिष्य अविकार्य होता है उसके मन में लोकजीवनगत प्रसंगादि को देखकर थोड़ी-सी भी खलबली नहीं मचती, अथवा महाकवियों के काव्यों के आस्वाद से आनन्द की लहरें भी नहीं उछलतीं। व्याकरण तथा तर्कशास्त्र दोनों मनुष्य को तर्ककठोर एवं नीरस बनानेवाले शास्त्र हैं। तार्किक वा वैयाकरण प्रायः काव्यरस-पराङ्मुख होता है। अन्य कवियों की कृतियों के श्रवणपठन का महत्त्व भामह द्वारा भी प्रतिपादित है— द्रष्टव्य—'विलोक्यान्यनिबन्धांश्च कार्यः काव्यक्रियादरः ॥' (काव्यालंकार १।१०)। वामन भी कहते हैं—'तत्र काव्यपरिचयो लक्ष्यज्ञत्वम् ॥ अन्येषां काव्येषु परिचयो लक्ष्यज्ञत्वम्। ततो हि काव्यबन्धस्य व्युत्पत्तिर्भवति ॥'—काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः १-३-१२। 'संदर्शितं पश्यति नार्कमन्धः।' इस प्रकार की कल्पना दण्डी के काव्यादर्श में भी पायी जाती है (देखिए—'किमन्धस्य अधिकारोऽस्ति रूपभेदोपलब्धिषु ॥' काव्यादर्श १।८)। 'न गर्दभो······' इत्यादि उक्ति में क्षेमेन्द्र का मुँहफटपन दिखाई देता है।

इति ततसुकृतानां प्राक्तनानां विपाके
भवति शुभमतीनां मन्त्रसिद्धं कवित्वम्।
तदनु पुरुषयत्नैर्धीमताभ्युदेति
स्फुरति जडधियां श्रीशारदा साधनेन ॥२४॥

भावार्थ—इस प्रकार पूर्वजन्मों के पुण्यकृत्यों का परिपाक होकर शुभमति पुरुषों को मंत्र के द्वारा सिद्ध कवित्वशक्ति प्राप्त होती है। तत्पश्चात् बुद्धिमानों के पौरुष प्रयत्नों के द्वारा (श्रीशारदा का) अभ्युदय होता है और मंदबुद्धि पुरुषों में श्रीशारदा का स्फुरण साधना के द्वारा होता है।

टिप्पणी—राजशेखर ने कारयित्री प्रतिभा के सहजा, आहार्या एवं औपदेशिकी इस प्रकार तीन भेद माने हैं। उनमें से औपदेशिकी के बारे में वह कहता है—'मंत्रतंत्राद्युपदेशप्रभवा औपदेशिकी।·····'काव्य

काव्यांगविद्यासु कृताभ्यासस्य धीमतः। मंत्रानुष्ठाननिष्ठस्य नेदिष्ठा कविराजता।' (काव्यमीमांसा, चतुर्थोऽध्यायः)।

इति श्रीव्यासदासापराख्यक्षेमेन्द्रकृते कविकण्ठाभरणे कवित्वप्राप्तिः प्रथमः सन्धिः।

इस प्रकार श्रीव्यासदास इस दूसरे नाम को धारण करनेवाले क्षेमेन्द्र द्वारा रचित कविकण्ठाभरण में कवित्व की प्राप्ति नामकी प्रथम सन्धि समाप्त हुई।

संक्षिप्त समालोचन—इस सन्धि के दूसरे श्लोक से पता चलता है कि, ग्रंथ की रचना में क्षेमेन्द्रका उद्दिष्ट द्विविध है—नौसिख कवियों का पथप्रदर्शन और पंडितों का ज्ञानवर्द्धन। प्रारम्भ के ६ से १४ श्लोक क्षेमेन्द्र के योगशास्त्र-मंत्रशास्त्रनैपुण्य के अच्छे परिचायक हैं। क्षेमेन्द्र ने तार्किकों तथा वैयाकरणों का दो बार (श्लोक १५ एवं २२) निषेध किया है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि, क्षेमेन्द्र की दृष्टि से तार्किक तथा वैयाकरण काव्य के प्रांत में टहलने के लिए सर्वथा अपात्र रहते हैं। क्षेमेन्द्ररचित १५ वां श्लोक ध्वन्यालोककार के 'शब्दार्थशासनज्ञानमात्रेणैव न वेद्यते। वेद्यते स तु काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव केवलम्॥' (ध्वन्यालोक १—७) इस श्लोक से तुलनीय है। क्षेमेन्द्रकृत १६ वें श्लोक से अनुमान होता है कि, क्षेमेन्द्र के समय काव्यपाठों के कार्यक्रम होते होंगे। विवेकसिंचन से काव्य प्रगल्भता पाकर उछलता है यह क्षेमेन्द्र का वचन (श्लोक १८) बड़ा महत्त्वपूर्ण है। क्षेमेन्द्र की दृष्टि से कालिदास के प्रबन्ध ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व के थे, ऐसा भी एक अनुमान श्लोक १९ से होता है।

प्राप्तगिरः कवेः शिक्षाकथनं नाम द्वितीयः सन्धिः ।

छायोपजीवी पदकोपजीवी पादोपजीवी सकलोपजीवी ।
भवेदथ प्राप्तकवित्वजीवी स्वोन्मेषतो वा भुवनोपजीव्यः ॥ १ ॥

भावार्थ—भाषाप्रभुत्वप्राप्त कवि की शिक्षा का निरूपण नामकी द्वितीय सन्धि (अत्र प्रारम्भ होती है ।)

भाषाप्रभुत्वप्राप्त कवि अन्य कवि की छाया पर जीनेवाला, अन्य कवि के पदों पर जीनेवाला, अन्य कवि के चरणों पर (कविरचित श्लोक के अंशों पर) जीनेवाला, और अन्यरचित समस्त काव्य पर जीनेवाला होता है। बाद में वह कवि स्वप्रयत्नप्राप्त कवित्व पर निर्भर रहता है। और प्रतिभाशाली कवि अपनी प्रतिभा के उन्मेष के कारण भुवनों का उपजीव्य होता है।

टिप्पणी—इस विषय का सप्रपंच निरूपण राजशेखर की काव्य-मीमांसा के ग्यारहवें तथा बारहवें अध्यायों में प्राप्त होता है। राजशेखर की दृष्टि से शब्द-हरण ही पाँच प्रकार का होता है—"शब्दहरणमेव तावत्पंचधा पदतः, पादतः, अर्धतः, वृत्ततः, प्रबन्धतश्च ।.....सभापतिस्तु द्विधा, उपजीव्य, उपजीवकश्च । तत्रोपजीवनमात्रेण न कश्चिद्दोषः । यतः सर्वोऽपि परेभ्यः एव व्युत्पद्यते, केवलं तत्र समुदायो गुरुः 'तद्वदुक्ति-हरणम्' इत्याचार्याः ।" इतना कहकर राजशेखर सिद्धान्तरूप में प्रतिपादन करते हैं—'नास्त्यचौरः कविजनो नास्त्यचौरो वणिग्जनः । स नन्दति विना वाच्यं यो जानाति निगूहितम् ॥' (काव्यमीमांसा, एकादशोऽध्यायः)।

छायोपजीवी यथा भट्टभल्लटस्य — [भल्लटशतक ४]

४. 'नन्वाश्रयस्थितिरियं तव कालकूट !
केनोत्तरोत्तरविशिष्टपदोपदिष्टा ।
प्रागर्णवस्य हृदये वृषलक्ष्मणोऽथ
कण्ठेऽधुना वससि वाचि पुनः खलानाम् ॥'

भावार्थ—छायोपजीवी कवि का निरूपण करेंगे। उदाहरण के लिए भट्टभल्लट का यह श्लोक लीजिए—

'हे कालकूट विष! उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हो जानेवाले इन स्थानों का आश्रय करने का उपदेश तुझे किसने किया? तू पहले महासागर के हृदय में (रहता) था, अनन्तर श्रीशंकर (वृष अर्थात् बैल है लक्ष्मन् अर्थात् चिन्ह जिसका वह वृषलक्ष्मन् अर्थात् श्रीशंकर) के कण्ठ में था और (पुनः) आजकल दुष्टों की वाणी में रहता है।'

यथा च श्रीमदुत्पलराजदेवस्य—

५. 'मात्सर्यतीव्रतिमिरावृतदृष्टयो ये
ते कस्य नाम न खला व्यथयन्ति चेतः।
मन्ये विमुच्य गलकन्दलमिन्दुमौले-
र्येषां सदा वचसि वल्गति कालकूटः॥'

भावार्थ—और (अब) श्रीमत् उत्पलराजदेव का यह श्लोक पढ़िए—

जिनकी दृष्टि तीव्र मत्सररूप अंधकार से आवृत (अर्थात् आच्छादित) रहती है और चन्द्रशेखर के (अर्थात् श्रीशंकर के) कंठ को मानों छोड़कर (भागा हुआ) कालकूट (अत्यन्त घातक) विष जिनकी वाणी में नित्य नाचता (अर्थात् उछलता) है, वे दुष्ट पुरुष किसका अन्तःकरण व्यथित नहीं करते? (सब लोगों का करते हैं।)

टिप्पणी—ऊपर का क्रमांक ४ का श्लोक मूल काव्य है। उसमें जिस कल्पना का वर्णन पाया जाता है, उसी की छाया श्लोकांक ५ में स्पष्टतया दिखाई पड़ती है। इसलिए उत्पलराज छायोपजीवी कवि ठहरते हैं। इसी क्रम से पदकोपजीवी आदि आगे के कवि-भेदों का वर्णन किया गया है। इससे क्षेमेन्द्र की सुव्यवस्थित ग्रंथरचनाशैली का अच्छा बोध होता है।

पदकोपजीवी यथा मुक्ताकणस्य—

६. 'यथा रन्ध्रं व्योम्नश्चलजलदधूमः स्थगयति
स्फुलिङ्गानां रूपं दधति च यथा कीटमणयः।

यथा विद्युज्ज्वालोल्लसनपरिपिङ्गाश्च ककुभ-
स्तथा मन्ये लग्नः पथिकतरुखण्डे स्मरदवः ॥'

भावार्थ—पदकोपजीवी कवि का निरूपण करेंगे। उदाहरण के लिए मुक्ताकण का यह श्लोक लीजिए—

'जैसे गतिशील मेघरूप धूम आकाश के छेद को भर देता है और जैसे जुगनूं चिनगारियों के रूप को धारण करते हैं तथा जैसे विद्युत् की ज्वाला के प्रकाश से दिशाएँ पूर्णतया भूरे रंग की हो जाती हैं, वैसे लगता है कि, यात्रियों के जंगल में मानों दावाग्नि जल रहा है।'

टिप्पणी—हम भूमिका में कह आये हैं कि, क्षेमेन्द्र पाठकों पर उदाहरणों की वृष्टि करता है। लेकिन इस विषय में यह कहना नितान्त आवश्यक है कि, क्षेमेन्द्रदत्त उदाहरण-श्लोक केवल संख्या-दृष्टया ही अनेक नहीं, बल्कि काव्यदृष्टया सुन्दर अतएव आकर्षक भी रहते हैं। प्रस्तुत श्लोक हमारे इस विधान का अच्छा समर्थक है।

यथा चैतद्भ्रातुश्चक्रपालस्य—

७. 'सरस्यां एतस्यामुदरवलिवीचीविलुलितं
यथा लावण्याम्भो जघनपुलिनोल्लङ्घनकरम्।
यथा लक्ष्यश्चायं चलनयनमीनव्यतिकर-
स्तथा मन्ये मग्नः प्रकटकुचकुम्भः स्मरगजः ॥'

भावार्थ—और (अब) इसके (मुक्ताकण के) भाई चक्रपाल का यह श्लोक पढ़िए—

'जैसे इस (सौंदर्य) सरोवर में लावण्यरूप जल इसकी उदरवलिरूप लहरियों के द्वारा चंचल (अर्थात् आंदोलित) होकर कमर के तट का उल्लंघन करता है और जैसे चंचल नेत्ररूप मत्स्यों का यह समूह लक्षित (अर्थात् दृग्गोचर) होता है, वैसे लगता है कि, उन्नत स्तनरूप गंडस्थलवाला कामरूप हाथी मानों मग्न (खुश) हुआ है।'

टिप्पणी—ऊपर के दो श्लोकों में 'तथा मन्ये' इतने पद उभय-समान हैं।

पादोपजीवी यथा अमरकस्य— [अमरुशतक १६३]

८. 'गन्तव्यं यदि नाम निश्चितमहो गन्तासि केयं त्वरा
द्वित्राण्येव दिनानि तिष्ठतु भवान् पश्यामि यावन्मुखम् ।
संसारे घटिकाप्रणालविगलद्धारा समे जीविते
को जानाति पुनस्त्वया सह मम स्याद् वा न वा सङ्गमः ॥'

भावार्थ—पादोपजीवी कवि का निरूपण करेंगे। उदाहरण के लिए लीजिए यह अमर का श्लोक—

'अच्छा तो (नाम), यदि जाने का निश्चय ही है तो जा। लेकिन यह इतनी जल्दबाजी किस लिए ? आप केवल दो-तीन ही दिन ठहर जाइए, तब तक मैं आपका मुँह देखूँगी। घटिकारूप प्रणाली से (नाली से) स्रवनेवाले जलबिंदुओं के समान इस संसारान्तर्गत जीवित में फिर से तेरे साथ मेरा संगम होगा या नहीं होगा यह कौन जानता है ?'

यथा मम—

९. 'हंहो स्निग्धसखे ! विवेक ! बहुभिः प्राप्तोऽसि पुण्यैर्मया
गन्तव्यं कतिचिद् दिनानि भवता नास्मत्सकाशात् क्वचित् ।
त्वत्सङ्गेन करोमि जन्ममरणोच्छेदं गृहीतत्वरः
को जानाति पुनस्त्वया सह मम स्याद् वा न वा सङ्गमः ॥'

भावार्थ—उदाहरण के लिए मेरा यह श्लोक पढ़िए—

'हां तो प्रियमित्र विवेक, अनेक पुण्यकृत्यों के द्वारा मैंने तुझे प्राप्त किया है। आप मेरे पास से कहीं भी थोड़े दिन के लिए (भी) मत जाइए। मैं जल्दबाजी करके तेरे समागम के द्वारा जन्ममृत्यु का (हमेशा के लिए) नाश करता हूँ। तेरे साथ फिर से मेरा संगम होगा या नहीं होगा, कौन जानता है ?

टिप्पणी—अमर की सूक्ति के चौथे पाद का क्षेमेन्द्र ने पूर्णतया हरण किया। राजशेखर ने भी अपनी काव्यमीमांसा में (ग्यारहवें अध्याय में) इस प्रकार के पादहरण के अनेक उदाहरण दिये हैं।

सकलोपजीवी यथा आर्यभट्टस्य—

१०. 'शब्दैर्निसर्गकटुभिर्मलिनस्वभावाः
श्रोत्रं खला निगडवत् परितस्तुदन्ति ।
अन्यैरलुप्तमदबन्धतयाऽतिमञ्जु-
मञ्जीरवत्तु सुजना जनयन्ति मोदम् ॥'

पाठभेद—क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसंग्रह में (१९६१, पृ० ६८) तृतीय पाद में 'मदबन्ध' की जगह 'पदबन्ध' पाठ पाया जाता है ।

भावार्थ—सकलोपजीवी कवि का निरूपण करेंगे। उदाहरण के लिए सुनिए यह आर्यभट्ट का पद्य—

'मलिन स्वभाव के दुष्ट पुरुष अपने स्वभावतः कटु वचनों के द्वारा, वेड़ी के समान, कर्णेन्द्रियको अत्यन्त पीड़ा देते हैं। किन्तु सज्जन पुरुष अपने श्रवणमधुर एवं आनंददायकता लुप्त न होने के कारण अतिशय मञ्जुल (वचनों के द्वारा), पायज़ेब के समान, आनन्द देते हैं।'

यथा च भट्टबाणस्य— [कादम्बरी—पूर्वभाग ६]

११. 'कटु क्वणन्तो मलदायकाः खलास्तुदन्त्यलं बन्धनश्रृङ्खला इव ।
मनस्तु साधुध्वनिभिः पदे पदे हरन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव ॥'

भावार्थ—और उदाहरण के लिए भट्टबाण का यह श्लोक लीज़िए—

कटु बोलनेवाले और मालिन्यदायक दुष्ट लोग, बेड़ीयों के समान, अत्यन्त पीड़ा देते हैं। किन्तु सज्जन पुरुष मधुर शब्दों के द्वारा, रत्नजड़ित पायजेब के समान, पदपद पर चित्त का आकर्षण करते हैं।

टिप्पणी—छायोपजीवी (प्रकार पहला) और सकलोपजीवी (प्रकार चौथा) कवियां में अन्तर यह है कि, पूर्वोक्त कवि अन्य कवि की कल्पनामात्र का ग्रहण करता है, लेकिन उस कल्पना को वह अपनी शब्दसंपदा में अभिव्यक्त करता है। सकलोपजीवी कवि कल्पना के साथ शब्दरचना का भी हरण करता है। राजशेखरकृत वर्गीकरण के अनुसार हम छायोपजीवी कवि को चुम्बक कवि ('यश्चुम्बति परस्यार्थं वाक्येन

स्वेन हारिणा। स्तोकार्पितनवच्छायं चुम्बकः स कविर्मतः ॥' काव्य-मीमांसा, १२वां अध्याय) कह सकते हैं और सकलोपजीवी कवि को कर्षक कवि ('परवाक्यार्थमाकृष्य यः स्ववाचि निवेशयेत्। समुल्लेखेन केनापि स स्मृतः कर्षकः कविः ॥'—काव्यमीमांसा, तत्रैव) कह सकते हैं।

भुवनोपजीव्यो यथा भगवान् व्यासः। तथा चोक्तम्—

'इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते।
उदयं प्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः ॥'

भावार्थ—भुवनोपजीव्य कवि, जैसे महर्षि व्यास। और ऐसा कहा गया है—

जिस प्रकार उत्कर्ष की उत्कट इच्छा रखनेवाले सेवकों के द्वारा किसी उदार अन्तःकरण के धनी का आश्रय किया जाता है, उसी प्रकार सभी श्रेष्ठ कवियों के द्वारा (व्यास महर्षि के) इस आख्यान का (अर्थात् महाभारत का) उपजीविका के लिए आश्रय किया जाता है।

टिप्पणी—क्षेमेन्द्र की दृष्टि से व्यासर्षि भुवनोपजीव्य कवि हैं और वाल्मीकि सर्वोपजीव्य एवं कवियों में चक्रवर्ती हैं। (द्रष्टव्य—'नुमः सर्वोपजीव्यं तं कवीनां चक्रवर्तिनम्। यस्येन्दुधवलैः श्लोकैर्भूषिता भुवन-त्रयी ॥' रामायणमंजरी, श्लोकांक ४)। राजशेखर के विभाजन की पद्धति के अनुसार हम व्यासर्षि को चिन्तामणि कवि कह सकते हैं (द्रष्टव्य—'चिन्तासमं यस्य रसैकसूतिरुदेति चित्राकृतिरर्थसार्थः। अदृष्टपूर्वो निपुणैः पुराणैः कविः स चिन्तामणिरद्वितीयः ॥'—काव्यमीमांसा, द्वादशोध्यायः)। वाङ्मयचौर्य का निर्देश बाणभट्ट भी करते हैं—देखिए—'अन्यवर्णपरा-वृत्त्या बन्धचिह्ननिगूहनैः। अनाख्यातः सतां मध्ये कविश्चौरो विभाव्यते ॥'—(हर्षचरितम्, १०६)।

प्राप्तगिरः कवेः शिक्षास्तावदाह—

भावार्थ—जिसने भाषा पर अधिकार प्राप्त कर लिया है ऐसे कवि की शिक्षा का अब निरूपण करेंगे—

व्रतं सारस्वतो यागः पूर्वं विघ्नेशपूजनम् ।
विवेकशक्तिरभ्यासः संधानं प्रौढिरश्रमः ॥ २ ॥

भावार्थ—भाषाप्रभु कवि व्रत का पालन करे, सरस्वती के लिए यजन (यज्ञ) करे, सबसे पहले विघ्नेश की (अर्थात् श्रीगणेश की) पूजा-अर्चा करे और विवेचक शक्ति को संपादन करे। (वह) काव्य-लेखन का अभ्यास करे तथा (नित्य अभिनव अर्थों का) अनुसंधान करे जिससे वह अनायास (अ-कष्टसाध्य) काव्य-रचना कर सके।

टिप्पणी—राजशेखर कहते हैं—'स्वास्थ्यं प्रतिभाभ्यासो भक्तिर्विद्वत्कथा बहुश्रुतता। स्मृतिदार्ढ्यमनिर्वेदश्च मातरोऽष्टौ कवित्वस्य ॥' (काव्यमीमांसा—दशमोऽध्यायः)।

वृत्तपूरणमुद्योगः पाठः परकृतस्य च ।
काव्यांगविद्याधिगमः समस्यापरिपूरणम् ॥ ३ ॥

भावार्थ—वह वृत्तपूर्ति का उद्यम करे और अन्य कवियों की रचनाएँ पढ़े। वह काव्य के उपकारक अन्य विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करे और समस्यापूर्ति का प्रयत्न करे।

टिप्पणी—भामह ने 'विलोक्यान्यनिबन्धांश्च कार्यः काव्यक्रियादरः ॥' (काव्यालंकार १।१०) ऐसा स्पष्ट आदेश दिया है। वामन भी 'तत्र काव्यपरिचयो लक्ष्यज्ञत्वम् ।' (काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः १-३-१२) ऐसा अवश्य कहते हैं। राजशेखर ने तो पुरातन-कवि-निबन्धावलोकन की काव्यमाताओं में गणना की है (द्रष्टव्य—काव्यमीमांसा, दसवां अध्याय)। कवि का भार बहुत भारी रहता है, जैसे भामह ने कहा है—'न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला। जायते यन्न काव्यांगं अहो भारो महान् कवेः ॥' (काव्यालंकार, ५-४)। इसीलिए काव्यांगों का ज्ञान कवि के लिए आवश्यक है। वामन की दृष्टि से लोक, विद्या व प्रकीर्ण का काव्यांगों में समावेश होता है (देखिए, काव्यालंकारसूत्र-वृत्ति १-३-१) जिनमें से लोक का अर्थ है स्थावरजंगमात्मक लोक का वर्तन (तत्रैव १-३-२), विद्या का अर्थ है व्याकरण—अभिधानकोष—

छंदःशास्त्र—कला—कामशास्त्र—दण्डनीति–आदि शास्त्र (तत्रैव १-३-३ से १०), प्रकीर्ण का अर्थ है काव्यपरिचय, काव्यबन्धोद्यम, वृद्धसेवा, पदों का रखना एवं निकालना, प्रतिभा और चित्त की एकाग्रता (तत्रैव १-३-११ – २०) । राजशेखर ने भी विद्योपविद्याओं का विवरण किया है (द्रष्टव्य, काव्यमीमांसा दसवां अध्याय) ।

सहवासः कविवरैर्महाकाव्यार्थचर्वणम् ।
आर्यत्वं सुजनैर्मैत्री सौमनस्यं सुवेषता ।। ४ ।।

भावार्थ—वह श्रेष्ठ कवियों के संपर्क में रहे, महाकाव्यों के अर्थों की (अथवा विषयों की) मन में बार-बार चर्वणा करे, वृत्ति औदार्यपूर्ण (अर्थात् सरल, सौजन्यपूर्ण) रखे, सज्जनों से स्नेह करे, चित्त प्रसन्न रखे और सुन्दर वेष को परिधान करें ।

टिप्पणी—राजशेखर ने 'सुजनोपजीव्यकविसन्निधि' की काव्यमाताओं में परिगणना की है । उसी तरह अनिर्वेद अर्थात् उत्साह की भी । आर्यत्व की निरूपणा काव्यमीमांसा में पायी जाती है । राजशेखर कहते हैं—'शुचि शीलनं हि सरस्वत्याः संवननं आमनन्ति । सः यत्स्वभावः कविस्तदनुरूपं काव्यम् । यादृशाकारश्चित्रकरस्तादृशाकारमस्य चित्रमिति प्रायो वादः ।।' (का० मी० दसवाँ अध्याय) । राजशेखर सुवेष के बारे में कहते हैं—'महार्हं अनुल्बणं च वासः ।' (तत्रैव)

नाटकाभिनयप्रेक्षा शृंगारालिंगिता मतिः ।
कवीनां संभवे दानं गीतेनात्माधिवासनम् ।। ५ ।।

भावार्थ—वह नाटक में अभिनय को देखे, बुद्धि शृंगाररसमय रखे, अन्य कवियों की यथासंभव मदद करे और संगीत को आत्मा में स्थान देकर उसको (आत्मा को) प्रसन्न रखे ।

टिप्पणी—नाट्यप्रयोगों के प्रेक्षण से नाट्यरचना के सूक्ष्म अंगों से परिचय हो जाता है । 'शृंगारालिंगिता मतिः' रखने का कारण वामन

के शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं—'कामोपचारबहुलं हि वस्तु काव्यस्येति ।' (काव्या० सू० १-३-८) ।

लोकाचारपरिज्ञानं विविक्ताख्यायिकारसः ।
इतिहासानुसरणं चारुचित्रनिरीक्षणम् ॥ ६ ॥

भावार्थ—वह लोगों के आचरण का सम्यक् ज्ञान संपादन करे, सदभिरुचिसंपन्न कथा-आख्यायिकादि में रुचि रखे, इतिहास का अनुशीलन करे और सुन्दर चित्रों का अवलोकन करे ।

टिप्पणी—लोकाचार का अर्थ है लोकवृत्त (वामन-काव्या० सू० १-३-२) । इतिहासानुसरण का अन्तर्भाव विद्योपविद्यानुशीलन में होता है । इस बारे में राजशेखर कहते हैं—'···काव्यस्य विद्या उपविद्याश्चानुशीलयेदाप्रहरात् । न ह्येवं विधोऽन्यः प्रतिभाहेतुर्यथा प्रत्यग्रसंस्कारः ।' (का० मी० १० वाँ अध्याय) ।

शिल्पिनां कौशलप्रेक्षा वीरयुद्धावलोकनम् ।
शोकप्रलापश्रवणं श्मशानारण्यदर्शनम् ॥ ७ ॥

भावार्थ—वह कारीगरों की कलाकुशलता का सम्यक् अवलोकन करे, वीरों के युद्धों को देखे, शोकमग्न व्यक्तियों का विलाप सुने और श्मशान, अरण्य आदि स्थलों का दर्शन करे ।

टिप्पणी—कवि को युद्धादिकों के वर्णन के पूर्व कैसे अध्ययन करना चाहिए इसका विवरण यहाँ मिलता है । साथ-साथ काव्यगत वास्तविक वर्णनों के बारे में (Reality in poetry) क्षेमेन्द्र की क्या कल्पना थी, इसकी भी जानकारी प्राप्त होती है । इसी दृष्टि से आगे का श्लोक भी समझ लेना चाहिए ।

व्रतिनां पर्युपासा च नीडायतनसेवनम् ।
मधुरस्निग्धमशनं धातुसाम्यमशोकता ॥ ८ ॥

भावार्थ—वह व्रतस्थ व्यक्तियों की सेवा करे और शुक-चकोरादि

पंछियों के घोसलों तथा मनुष्यों के मकानों को देखे। वह मीठे और स्निग्ध पदार्थों का सेवन करे, चित्तवृत्तियाँ संतुलित रखे और दुःखी न रहे।

टिप्पणी—राजशेखर कहते हैं कि, कवि के भवन में ही सारस, चक्रवाक, हंस, चकोर, क्रौंच, कुरर, शुक, सारिका आदि पंछी रहें। (काव्यमीमांसा, १० वाँ अध्याय)। ये सब तो यदि कवि धनी हो तभी हो सकता है। भोजन के बारे में राजशेखर 'अविरुद्धं भुञ्जीत' इतना ही कहते हैं (तत्रैव)।

निशाशेषे प्रबोधश्च प्रतिभा स्मृतिरादरः।
सुखासनं दिवा शय्या शिशिरोष्णप्रतिक्रिया ॥ ९ ॥

भावार्थ—वह थोड़ी-सी रात अवशिष्ट रहने पर उठे, प्रतिभा तेजस्वी रखे, अनुभवों का आदरपूर्वक स्मरण करे, (प्रशस्त एवं) सुखावह आसन पर बैठे, दिन में थोड़ी निद्रा ले और जाड़े से तथा गरमी से अपने को बचावे।

टिप्पणी—'निशाशेषे प्रबोधश्च' का साम्य राजशेखर के 'स प्रातरुत्थाय कृतसन्धावरिवस्यः सारस्वतं सूक्तमधीयीत।' इस वचन में (काव्य० मी० १० वां अध्याय) मिलता है। राजशेखर ने (तत्रैव) प्रतिभा तथा स्मृतिदार्ढ्य का समावेश काव्य की आठ माताओं में किया है। राजशेखर की 'ततो विद्यावसथे यथासुखं आसीनः···' इस उक्ति की (तत्रैव) 'सुखासनं' से तुलना की जा सकती है।

आलोकः पत्रलेख्यादौ गोष्ठीप्रहसनज्ञता।
प्रेक्षा प्राणिस्वभावानां समुद्राद्रिस्थितीक्षणम् ॥१०॥

भावार्थ—वह पत्र, नक्काशी किये लेख आदिकों का अवलोकन करे, विद्वद्गोष्ठीयों में हास्यपूर्ण भाषण करने की चतुरता प्रकट करे, प्राणियों के स्वभाव-धर्मों का निरीक्षण करे और समुद्र, पर्वत आदिकी अवस्था का दर्शन करे।

टिप्पणी—राजशेखर की (काव्यमीमांसा, दसवां अध्याय) दृष्टि से सोचा जाए तो यहाँ वर्णित 'पत्रलेख्यादौ' का अन्तर्भाव बहुश्रुतता में,

'गोष्ठीप्रहसनज्ञता' का विद्वत्कथा में तथा 'प्रेक्षा'···इ० का लोकयात्रा में किया जा सकता है।

रवीन्दुताराकलनं सर्वर्तुपरिभावनम् ।
जनसङ्घाभिगमनं देशभाषोपजीवनम् ॥११॥

भावार्थ—वह सूर्य, चन्द्र, सितारे आदि का ज्ञान संपादन करे, सर्व ऋतुओं से भी परिचय प्राप्त कर ले, सभासंमेलनादिकों में शामिल हो, और देशीभाषाओं का प्रयोग करे।

टिप्पणी—भाषाओं के सम्बन्ध में राजशेखर कहते हैं—'संस्कृतवत्सर्वास्वपि भाषासु यथासामर्थ्यं यथारुचि यथाकौतुकं चावहितः स्यात् ।' (का० मी० ९ वाँ अध्याय)। राजशेखर और भी कहते हैं कि, कवि का परिचारक-वर्ग अपभ्रंश भाषा में प्रवीण होना चाहिए, परिचारिकाएँ मागधभाषा में प्रवीण होनी चाहिएँ, आन्तःपुरिक जन प्राकृत-संस्कृत-भाषाविद् होने चाहिए, मित्र तथा लेखक (scribe) सर्वभाषाकुशल होने चाहिए (तत्रैव, २० वां अध्याय)। कवि को चाहिए कि, वह जिस देश में जिस भाषा का नियम से व्यवहार होता हो, उस देश में उसी भाषा में स्वयं व्यवहार करे (तत्रैव)।

आधानोद्धरणप्रज्ञा कृतसंशोधनं मुहुः ।
अपराधीनता यज्ञसभाविद्यागृहस्थितिः ॥ १२ ॥

भावार्थ—वह (उचित) शब्दों की योजना का तथा अनुचित शब्दों के त्याग का ज्ञान संपादन करे, अपनी वाङ्मयकृतिका बार-बार संशोधन करता रहे, वह अपरतंत्र रहे (किसी का गुलाम न बने) और यज्ञसभा तथा विद्यालय आदि की स्थिति का अध्ययन करे (या यज्ञसभा में अथवा विद्यालय में निवास करे)। [लेकिन प्रकोष्ठ में दिया वैकल्पिक अर्थ उतना जँचता नहीं।]

टिप्पणी—आधानोद्धरण के बारे में वामन कहते हैं—

'पदाधानोद्धरणं अवेक्षणम् ॥ (का० सू० वृ० १-३-१५)। पदस्य

आधानं न्यासः। उद्धरणं अपसारणम्। तयोः खलु अवेक्षणम्। अत्र श्लोकौ—'आधानोद्धरणे तावद्यावद्दोलायते मनः। पदस्य स्थापिते स्थैर्ये हन्त सिद्धा सरस्वती ॥' (१-३-१५ की वृत्ति)। राजशेखर कहते हैं—'चतुर्थ एकाकिनः परिमितपरिषदो वा पूर्वाह्णभागविहितस्य काव्यस्य परीक्षा। रसावेशतः काव्यं विरचयतो न च विवेक्त्री दृष्टिस्तस्मादनुपरीक्षेत। अधिकस्य त्यागो, न्यूनस्य पूरणम्, अन्यथास्थितस्य परिवर्तनं, प्रस्मृतस्यानुसन्धानं चेत्यहीनम् ॥' (का० मी० १० वाँ अध्याय)। कवि यदि धनवान् होगा तभी अपराधीन रह सकता है। राजशेखर ने भी दारिद्र्य की गणना काव्य की पाँच महती आपत्तियों में की है (द्रष्टव्य-का० मी० १० वाँ अध्याय)।

अतृष्णता निजोत्कर्षे परोत्कर्षविमर्शनम्।
आत्मश्लाघाश्रुतौ लज्जा परश्लाघानुभाषणम् ॥ १३ ॥

भावार्थ—वह अपने उत्कर्ष की अभिलाषा न रखे, दूसरे कवि के अभ्युदय को सहन करे, अपनी प्रशंसा सुनने पर लज्जित (या नम्र) हो जाए और दूसरे की स्तुति में भाग ले।

टिप्पणी—इस संबंध में राजशेखर का कहना है—"न च स्वकृतिं बहु मन्येत। पक्षपातो हि गुणदोषौ विपर्यासयति। न च दृप्येत्। दर्पलवोऽपि सर्वसंस्कारानुच्छिनत्ति। परैश्च परीक्षयेत्।" (का० मी० १० वाँ आ०)।

सदा स्वकाव्यव्याख्यानं वैरमत्सरवर्जनम्।
परोन्मेषजिगीषा च व्युत्पत्त्यै सर्वशिष्यता ॥१४॥

भावार्थ—वह अपने (अर्थात् स्वरचित) काव्य का विवरण करने में हमेशा तत्पर रहे, वह किसीसे शत्रुता न करे, किसी के प्रति मत्सर-भाव न रखे, और दूसरे की प्रतिभापर उत्कर्ष पाने की महत्त्वाकांक्षा रखे (और) ज्ञानप्राप्ति के लिए किसी का भी शिष्य बने।

पाठस्यावसरज्ञत्वं श्रोतृचित्तानुवर्तनम्।
इङ्गिताकारवेदित्वमुपादेयनिबन्धनम् ॥ १५ ॥

भावार्थ—वह पाठके (अर्थात् अध्ययन के) अनुकूल समय की जानकारी रखे, (अथवा कविता-पाठ के समय का विचार करके योग्य कविताओं को पढ़े), श्रोताओं की चित्तवृत्ति का खयाल करके अनुरूप वर्तन करे, मुद्रासूचनादिकों को जान ले और ग्राह्य वस्तुओं का संग्रह करे।

उपदेशविशेषोक्तिरदीर्घरससङ्गतिः ।
स्वसूक्तप्रेषणं दिक्षु परसूक्तपरिग्रहः ॥१६॥

भावार्थ—उसको चाहिए कि, वह स्वगृहीत विशेष उपदेश की व्याख्या कर सके। वह एकही रसका आस्वादन दीर्घकालतक न करे। अपनी सुन्दर उक्तियाँ दशदिशाओं में भेजे और अन्य कवियों की सुन्दर उक्तियों का संग्रह करे।

टिप्पणी—इस संबंध में 'सिद्धं च प्रबन्धं अनेकादर्शगतं कुर्यात् ।' इस राजशेखरोक्ति का स्मरण होता है।

वैदग्ध्यं पटुता भङ्गिर्निःसङ्गैकान्तनिर्वृतिः ।
आशापाशपरित्यागः संतोषः सत्त्वशीलता ॥१७॥

भावार्थ—वह विदग्धता एवं कुशलता को आत्मसात् करे। उसकी बोलने की शैली तेजस्वी हो। वह एकान्त में बैठने में आनन्द का अनुभव करे। वह आशा के बंधनों का त्याग कर दे और सदा सन्तुष्ट एवं सत्त्वशील रहे।

टिप्पणी—राजशेखर कहते हैं—'काव्याभिनिवेशखिन्नस्य मनसस्तद्विनिर्वेदच्छेदाय आज्ञामूकपरिजनं विजनं वा तस्य स्थानम् ।' (का० मी० १० वाँ अध्याय)। क्षेमेन्द्र ने चौथे श्लोक में आर्यत्व तथा सौमनस्य का निर्देश कियाही है। यहाँ, इसीलिए, सत्त्वशीलता के उल्लेख की कोई खास जरूरत नहीं है।

अयाचकत्वमग्राम्यपदालापः कथास्वपि ।
काव्यक्रियासु निर्बन्धो विश्रान्तिश्चान्तरान्तरा ॥ १८ ॥

भावार्थ—वह कभी याचक के समान साह्यार्थ अपेक्षा न करे। दैनंदिन संभाषण में भी ग्राम्य शब्दों का उच्चारण न करे; काव्यरचना के बारे में स्वकल्पित नियमों का पालन करे; और बीच-बीच में विश्राम करे।

टिप्पणी—श्लोक १२ में अपराधीनता का उल्लेख देखते हुए यहाँ का अयाचकत्व शब्द निरर्थक-सा प्रतीत होता है। 'अग्राम्यपदालापः कथास्वपि' यह आदेश क्षेमेन्द्र की उच्च मानस-संस्कृति का द्योतक है। राजशेखर की दृष्टि से काव्यरचना के लिए ब्राह्म मुहूर्त सबसे अधिक योग्य है क्योंकि, 'ब्राह्मे मुहूर्ते मनः प्रसीदत्तांस्तानर्थानध्यक्षयति।' (का० मी० १० वाँ अध्याय)। लेकिन राजशेखर का ही मत है कि, असूर्यंपश्य, निषण्ण, दत्तावसर एवं प्रायोजनिक नामक चार प्रकार के कवियों के काव्य-रचना-काल भिन्न-भिन्न होते हैं।

नूतनोत्पादने यत्नः साम्यं सर्वसुरस्तुतौ।
पराक्षेपसहिष्णुत्वं गांभीर्यं निर्विकारता॥ १९॥

भावार्थ—वह नये काव्य के निर्माण में प्रयास करे, सभी देवताओं की समान रूप में प्रशंसा करे, परकृत स्वकाव्य-आलोचना को सहन करे तथा वृत्ति से गम्भीर और निर्विकार रहे।

टिप्पणी—नूतनार्थ की महिमा के बारे में राजशेखर का कहना है—'किन्त्वस्ति यद्वचसि वस्तु नवं सदुक्तिसन्दर्भिणां स धुरि तस्य गिरः पवित्राः।' (का० मी० १३वाँ अध्याय)। किसी भी एक धर्मसंप्रदाय का अनुयायी बनने से मनुष्य की संतुलनवृत्ति विचलित हो जाती है, जो काव्य का नाश करती है। इसलिए क्षेमेन्द्र ने 'साम्यं सर्वसुरस्तुतौ' कहा है।

अविकत्थनता दैन्यं परेषां नष्टयोजनम्।
पराभिप्रायकथनं परसादृश्यभाषणम्॥ २०॥

भावार्थ—वह आत्मप्रौढ़ी न करे, दीनता को भी धारण न करे, दूसरों की अपूर्ण काव्य-रचनाओं की परिपूर्ति करे, दूसरे के अभिप्राय का कथन करे एवं दूसरे के अनुरूप भाषण करे।

टिप्पणी—अविकत्थनता का आशय 'आत्मश्लाघाश्रुतौ लज्जा' (श्लोक १३) में पहले ही व्यक्त हो चुका है। उसी तरह 'दैन्यं' का अर्थ भी 'अयाचकत्वं' (श्लोक १८) में कथित है, इसलिए ये दोनों शब्द पुनरुक्त प्रतीत होते हैं।

सप्रसादपदन्यासः ससंवादार्थसंगतिः।
निर्विरोधरसव्यक्तिर्युक्तिव्याससमासयोः ॥ २१ ॥

भावार्थ—वह प्रसाद (गुण) पूर्ण शब्दों की रचना करे, संदर्भोचित अर्थों की गूँथनी करे, (वर्ण्य विषय के) अविरोधी (अर्थात् अनुरूप) रस की अभिव्यक्ति करे और यथान्याय संक्षेपविस्तारयुक्त रचनाओं की योजना करे।

टिप्पणी—प्रसाद गुण की महत्ता भामह से लेकर सभी शास्त्रज्ञों के द्वारा प्रतिपादित है। द्रष्टव्य—'आविद्वदङ्गनाबालप्रतीतार्थं प्रसादवत्' (काव्यालंकार २।३)। ध्वन्यालोककार कहते हैं—'स प्रसादो गुणो ज्ञेयः सर्वसाधारणक्रियः' ॥ २।३३ इस पर की वृत्ति में कहा गया है—'प्रसादस्तु स्वच्छता शब्दार्थयोः। स च सर्वरससाधारणो गुणः सर्वरचनासाधारणश्चेति व्यंग्यार्थापेक्षयैव मुख्यतया व्यवस्थितो मन्तव्यः।' निर्विरोधरसव्यक्ति के बारे में ध्वन्यालोककार कहते हैं—'प्रबन्धे मुक्तके वाऽपि रसादीन्बन्धुमिच्छता। यत्नः कार्यः सुमतिना परिहारे विरोधिनाम् ॥' ३।७३; 'अविरोधी विरोधी वा रसोऽङ्गिनि रसान्तरे। परिपोषं न नेतव्यस्तथा स्यादविरोधिता ॥' ३।७०।

प्रारब्धकाव्यनिर्वाहः प्रवाहश्चतुरो गिराम्।
शिक्षाणां शतमित्युक्तं युक्तं प्राप्तगिरः कवेः ॥ २२ ॥

भावार्थ—वह प्रारब्ध काव्य को पूर्ण करे और वाणी के सुन्दर प्रवाह को व्यक्त करे। इस प्रकार वाणी पर अधिकार प्राप्त शिष्य के हित के लिए अनुरूप शतसंख्याक शिक्षाओं का निरूपण यहाँ किया गया है।

टिप्पणी—प्रारब्धकाव्यनिर्वाह के सम्बन्ध में राजशेखर का कहना है—'पुनः समापयिष्यामि, पुनः संस्करिष्यामि, सुहृद्भिः सह विवेचयिष्यामि

इति कर्तुः आकुलता राष्ट्रोपप्लवश्च प्रबन्धविनाशकारणानि ॥' (का० मी० १०वाँ अ०)। यह मानों कवियों के लिए 'शतोपदेश' है। यहाँ 'शत' संख्या की भी पूर्ति होती है।

इति बहुतरशिक्षालक्षणक्षीणदोषे
प्रभवति गतनिद्रे प्रातिभे सुप्रभाते।
कविरविरविलुप्तव्याप्तिभिः सूक्तपादै-
र्नयति नवनवत्वं भावभावस्वभावम् ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस प्रकार बहुविध शिक्षाक्रम के पश्चात् आगे जिनके लक्षण कहे जायेंगे उन दोषों की क्षति होने पर (श्लिष्ट अर्थ के पक्ष में—दोषा अर्थात् रात समाप्त होने पर), निद्रा नष्ट होने पर, प्रभातकाल में जब प्रतिभा उत्साहपूर्ण रहती है तब कवि काव्यरचना में समर्थ होता है। ऐसा कविरूप सूर्य अपने व्यापक श्लोकांशों के द्वारा (सूर्य के अर्थ में—सूर्य अपने व्यापक किरणों के द्वारा) प्राणियों के रत्यादि भावों की स्वाभाविक स्थिति को (सूर्य के अर्थ में—पदार्थों के सत्तास्वभाव को) सौन्दर्य की प्राप्ति कराता है (सूर्य के अर्थ में—प्रकट कराता है)।

इति श्रीव्यासदासापराख्यक्षेमेन्द्रकृते कविकण्ठाभरणे प्राप्तगिरः शिक्षाकथनं द्वितीयः सन्धिः।

भावार्थ—इस प्रकार श्रीव्यासदास इस दूसरे नाम को धारण करनेवाले क्षेमेन्द्र द्वारा रचित कविकण्ठाभरण में भाषाप्रभुत्व प्राप्त कवि की शिक्षा का निरूपण नामक द्वितीय सन्धि समाप्त हुई।

संक्षिप्त समालोचन—क्षेमेन्द्र की ग्रन्थरचना पद्धतिपूर्ण (**systematic**) है। उसकी बहुश्रुतता का भी इस सन्धि के अध्ययन से पता चलता है। साथ-साथ वह राजशेखर-आनन्दवर्द्धन आदि पूर्वसूरियों का कितना ऋणी है उसका भी बोध हो जाता है। क्षेमेन्द्र ने अन्य कवियों के काव्यों का बुद्धिमान् के अनुरूप सूक्ष्म दृष्टि से, शास्त्रज्ञ के अनुरूप चिकित्सक बुद्धि से और सहृदय के अनुरूप रसिकता से अध्ययन-पठन किया था। उनका 'शतोपदेश' सर्वाङ्गी है। 'काव्य में

वस्तुवर्णन' इस विषय के बारे में क्षेमेन्द्र के क्या विचार थे इसका पता श्लोकांक ६, ७, ८, १० एवं १२ से चलता है। श्लोकांक १० तथा १६ से अनुमान होता है कि क्षेमेन्द्र के समय में विद्वत्कथा का प्रचुर प्रचलन रहा होगा। नाटकों के प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में होते होंगे (आधार-श्लोक ५)! श्लोकांक १६ के आधार पर कह सकते हैं कि, उस प्राचीन युग में हस्तलिखित पत्रपत्रिकाओं का रिवाज रहा होगा। क्षेमेन्द्र की दृष्टि से काव्यप्रान्त में श्रोता का महत्त्व सबसे अधिक (प्रमाण-श्लोक १५) है। श्लोक १९ में उल्लिखित तथ्य से यह मानना पड़ेगा कि, उस समय समीक्षकवर्ग अपना कार्य ठीक रीति से कर रहा था।

चमत्कारकथनं नाम तृतीयः संधिः ।

अथ शिक्षितस्य कवेः सूक्तिचमत्कारमाह—

सुकविरतिशयार्थी वाक्चमत्कारलोभा-
दभिसरति मनोज्ञे वस्तुशब्दार्थसार्थे ।
भ्रमर इव वसन्ते पुष्पकान्ते वनान्ते
नवकुसुमविशेषामोदमास्वादलोलः ॥ १ ॥

भावार्थ—चमत्कारका निरूपण नामक तृतीय संधि (का अब आरंभ होता है) ।

अब शिक्षाप्राप्त कवि की कविताओं में चमत्कार का निरूपण करते हैं—

जिस प्रकार वसंत ऋतु में अभी अभी विकसित, विशिष्ट पुष्पों की सुगंध के आस्वाद के लिए पर्युत्सुक भ्रमर फूलों से रमणीय बने उपवन की ओर दौड़ता है उसी प्रकार काव्य में सौन्दर्यातिशय के निर्माण की इच्छा रखनेवाला सत्कवि वाणी की चमत्कृति के (सुन्दरता के, हृद्यता के) लोभ से आकर्षक विषय (वस्तु), मनोहर शब्द तथा रमणीय अर्थवाले काव्य का अनुसरण करता है ।

टिप्पणी—श्लोकस्थ उपमा बड़ी मनोरम है, जिससे क्षेमेन्द्र की रसिकता तथा सौंदर्यदृष्टि का पता चलता है। अतिशय शब्द का शास्त्रीय लक्षण है—'बहून्गुणांश्चिन्तयित्वा सामान्यजनसंभवान् । विशेषः कीर्त्यते यस्तु ज्ञेयः सोऽतिशयो बुधैः ।' (सर्वतन्त्रसिद्धान्तपदार्थलक्षणसंग्रहः, संवत् २००६, पृ० १०) । यहाँ 'सौन्दर्य का उत्कर्ष' अर्थ में अतिशय शब्द प्रयुक्त हुआ है । काव्य में वर्ण्यविषय, शब्द तथा अर्थ यह त्रिपुटी नितान्त महत्त्व की होती है यह क्षेमेन्द्र की धारणा यहाँ स्पष्टरूप प्रकट हुई है । क्षेमेन्द्र की गुणदोषव्यवस्था इसी त्रयीपर अधिष्ठित है यह हम आगे चलकर चौथी संधि में देखेंगे । अब चमत्कारसिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं—

नहि चमत्कारविरहितस्य कवेः कवित्वं, काव्यस्य वा काव्यत्वम्।

एकेन केनचिदनर्घमणिप्रभेण
काव्यं चमत्कृतिपदेन विना सुवर्णम्।
निर्दोषलेशमपि रोहति कस्य चित्ते
लावण्यहीनमिव यौवनमङ्गनानाम्॥ २॥

भावार्थ—चमत्कारनिर्माण में अक्षम कवि में कवित्व (काव्यरचना की शक्ति, प्रातिभ ज्ञान) नहीं होता, अथवा चमत्कार से रहित काव्य को काव्य नहीं कह सकते हैं।

युवतीयों का तारुण्य यदि सौंदर्यहीन हो तो जैसे वह लवमात्र दोष से मुक्त रहने पर भी किसी के चित्त का आकर्षण नहीं कर सकता है, वैसे ही सुन्दर वर्णों से निबद्ध तथा पूर्णतया निर्दोष काव्य यदि चमत्कृति-उत्पादक शब्दों से रहित हो तो किसका मन आकृष्ट करेगा? सोना भी तो मूल्यवान रत्नों के तेज से ही आकर्षक बनता है।

टिप्पणी—क्षेमेन्द्र का अभिप्राय है कि, जो भी कवि कहलाता है वह सौंदर्ययोजना में अवश्य समर्थ होता है। जो चमत्कार की सृष्टि नहीं कर सकता उसकी काव्यरचना को केवल पद्यरचना समझना चाहिए। उसको काव्य की प्रतिष्ठा प्रदान करना अयोग्य है। अर्थात् हर एक काव्य—चाहे वह मुक्तक हो या प्रबन्ध हो—बिना चमत्कार के नहीं हो सकता। ऊपर की कारिका काव्यच्छटा की दृष्टि से जितनी रमणीय है, विचार की दृष्टि से उतनी ही महत्त्व की है। काव्य सुन्दर वर्णों से निबद्ध तथा पूर्णतया निर्दोष होते हुए भी चमत्कारहीन रहने पर अनाकर्षक ही रहता है। क्षेमेन्द्र के इस मन्तव्य से उसके सौन्दर्यवाद का अच्छा बोध होता है। क्षेमेन्द्रप्रयुक्त 'सुवर्ण' शब्द पढ़कर इस भामहोक्ति का स्मरण होता है—'अतिशेते ह्यलङ्कारं अन्यं व्यञ्जनचारुता॥' (काव्यालंकार ६।२८)।

चमत्कारविरहो यथा मालवरुद्रस्य—

१२. 'वेल्लत्पल्लव संमिलल्लत लसत्पुष्प स्फुटत्कुड्मल
स्फूर्जद्गुच्छभर क्वणन्मधुकरक्रीडाविनोदाकर।

रक्ताशोक सखे ! दयां कुरु हर प्रारब्धमाडम्बरं
प्राणाः कण्ठमुपागताः प्रियतमो दूरे त्वमेवंविधः ॥'

भावार्थ—चमत्कार का अभाव मालवरुद्र के इस श्लोक में है—

अरे मित्र, रक्तवर्ण के अशोक वृक्ष, तेरे पत्ते हिल रहे हैं, लताएँ तुझे दृढ़ आलिंगन दे रही हैं, तेरे फूल तेजस्वी दिखाई देते हैं, कलियाँ मुस्कुराती (विकसित होती) हैं, फूलों के गुच्छ सुन्दर दिखाई देते हैं। तू (मानों) गुनगुनानेवाले भंवरों के क्रीडानंद का निधि है। मित्र, अपनी इस समृद्धि का कृपया उपसंहार कर। (क्योंकि) प्रियतम दूर देश में होने के कारण मेरे प्राण कंठ में आ पहुँचे हैं, और तू तो इस प्रकार (कामोत्पादक रूप धारण कर बैठा) है।

चमत्कारो यथा कालिदासस्य

१३. 'रक्तस्त्वं नवपल्लवैरहमपि श्लाघ्यैः प्रियाया गुणै-
स्त्वामायान्ति शिलीमुखाः स्मरधनुर्मुक्ताः सखे मामपि।
कान्तापादतलाहतिस्तव मुदे तद्वन् ममाप्यावयोः
सर्वं तुल्यमशोक ! केवलमहं धात्रा सशोकः कृतः ॥'

भावार्थ—कालिदास के इस श्लोक में चमत्कार है—

नये पत्तों के कारण तू रक्त (लाल) हो गया है, मैं भी प्रिया के स्पृहणीय गुणों के कारण (उस पर) अनुरक्त हूँ। शिलीमुख (भंवरे) तेरे प्रति आते हैं, और मित्र, मेरे प्रति भी कामदेव के धनुष से मुक्त शिलीमुख (बाण) आते हैं। रमणी के पैर के तलवे का आघात जैसे तेरे आनंद का कारण होता है, वैसे ही मेरे भी। हम दोनों का सब कुछ समान है। लेकिन मित्र अशोक, विधाता ने केवल मुझे सशोक (दुःखी) किया है (और तू अशोक अर्थात् सुखी है)।

टिप्पणी—इस पद्य का भाव रमणीय नहीं, ऐसा कौन कह सकता है ? क्षेमेन्द्र ने परस्पर-समान अर्थ के दो श्लोकों का चुनाव करने में बड़ी ही मार्मिकता प्रदर्शित की है। इन दोनों श्लोकों पर विचार करने पर 'कहाँ कालिदास और कहाँ मालवरुद्र ?' यह विचार मन में अवश्य

पैदा होता है। कालिदास की सूक्ति में खास 'Kalidasian touch' होने के कारण चमत्कार अवश्य है। क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसंग्रह के संपादक ने इस श्लोक को यशोवर्म का बतलाया है (द्रष्टव्य, पृ० ७१)।

तत्र दशविधश्चमत्कारः—अविचारितरमणीयः, विचार्यमाणरमणीयः, समस्तसूक्तव्यापी, सूक्तैकदेशदृश्यः, शब्दगतः, अर्थगतः, शब्दार्थगतः, अलंकारगतः, रसगतः, प्रख्यातवृत्तिगतश्च।

भावार्थ—काव्यगत (तत्र) चमत्कार के दस प्रकार होते हैं, जैसे—१. बिना विचार किये प्रतीत होनेवाला, २. विचार करने पर प्रतीत होनेवाला, ३. समस्त सूक्ति में रहनेवाला, ४. सूक्ति के एक अंश में रहनेवाला, ५. शब्द में रहनेवाला, ६. अर्थ में रहनेवाला, ७. शब्द तथा अर्थ दोनों में रहनेवाला, ८. अलंकार में रहनेवाला, ९. रस में रहने वाला और १० प्रख्यात व्यक्ति के वृत्त में (अर्थात् प्रख्यात व्यक्ति के चरित्र पर आधृत कथा-वस्तु में) रहनेवाला।

टिप्पणी—हम भूमिका में कह आये हैं कि, भामहादि शास्त्रकारोंने चमत्कार के समानार्थक हृद्यता, चारुता, सौन्दर्य आदि शब्दों के प्रयोग अपने अपने ग्रन्थों में किये हैं। तथा च चमत्कार शब्द के भी साक्षात् प्रयोग ध्वन्यालोक, वक्रोक्तिजीवित आदि ग्रन्थों में पाये जाते हैं। लेकिन क्षेमेन्द्रपूर्ववर्ती किसी भी शास्त्रकार ने चमत्कार का अर्थात् काव्यजनित आनंद का इस प्रकार वर्गीकरण-विभाजन नहीं किया था। क्षेमेन्द्र ही इस विषय में आद्य शास्त्रज्ञ है। क्षेमेन्द्रकृत पहले चार प्रकारों को पढ़ कर तो गणितशास्त्रगत Law of Probability काही स्मरण होता है! क्षेमेन्द्र ने इस विषय में काव्यगत शब्द, उनका अर्थ, काव्य के आभूषण, काव्यार्थरूप रस और काव्य की कथावस्तु इन सभी अंगों पर ध्यान दिया है, यह विशेष महत्त्व की बात है। क्षेमेन्द्र औचित्यविचारचर्चा में ('औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे'। कारिका ३) कहते हैं कि, औचित्य चमत्कार का निर्माण करता है। चौदहवीं सदी के कोई विश्वेश्वर नामक शास्त्रज्ञ ने अपनी 'चमत्कारचन्द्रिका' में सात चमत्कार-कारणों की गणना इस प्रकार की है—

'गुणं रीतिं रसं वृत्तिं पाकं शय्यामलंकृतिम् ।
सप्तैतानि चमत्कारकारणं ब्रुवते बुधाः[१] ॥'

विश्वेश्वर की दृष्टि से चमत्कार का अर्थ है 'विदुषां आनन्दपरिवाहः' (विद्वानों का आनंदातिशय)। उसने काव्य का 'चमत्कारि (शब्दचित्र), चमत्कारितर (अर्थचित्र और गुणीभूत व्यंग्य) और चमत्कारितम (व्यंग्यप्रधान)' इस प्रकार चमत्कारनिष्ठ विविध वर्गीकरण किया है[२] । अठारहवीं सदी के हरिप्रसाद नामक ग्रन्थकार ने तो चमत्कृति को काव्य की आत्मा कह डाला । वह अपने 'काव्यालोक' में (लेखनसमय सन् १७२९) लिखते हैं—

'विशिष्टशब्दरूपस्य काव्यस्यात्मा चमत्कृतिः ।
उत्पत्तिभूमिः प्रतिभा मनागत्रोपपादितम्' ॥[३]

संस्कृत साहित्यशास्त्र पर लिखनेवाले अन्तिम अधिकारी ग्रन्थकार जगन्नाथ पण्डित भी चमत्कार अर्थात् आल्हाद का उल्लेख अवश्य करते है ।'

अविचारितरमणीयो यथा मम शशिवंशे—

१४. 'शूराः सन्ति सहस्रशः सुचरितैः पूर्णं जगत् पण्डितैः
संख्या नास्ति कलावतां बहुतरैः शान्तैर्वनान्ताः श्रिताः ।
त्यक्तुं यः किल वित्तमुत्तममतिः शक्नोति जीवाधिकं
सोऽस्मिन् भूमिविभूषणं शुभनिधिर्भव्यो भवे दुर्लभः ॥'

भावार्थ—बिना विचार किये प्रतीत होनेवाला चमत्कार मेरे शशिवंशगत इस श्लोक में पाया जाएगा—

हज़ारो वीरपुरुष हैं, चारित्र्यसंपन्न विद्वानों से संसार पूर्ण है, कलावंत अगणित हैं, अनेक यतियों ने अरण्यों का आश्रय किया है, पर अपने प्राणों से (भी) अधिक प्रिय धन का जो त्याग कर सकता है ऐसा

१. Dr. V. Raghavan—Studies on Some Concepts of the Alaṅkāra Śāstra, 1942, p. 270 से उद्धृत ।

२. तत्रैव । ३. तत्रैव ।

उत्तम बुद्धिवाला, पृथ्वी का भूषण बननेवाला एवं पुण्यों का संचयरूप, धन्य पुरुष इस संसार में दुष्प्राप्य है।

टिप्पणी—इस श्लोकस्थ विचार-सौंदर्य झट अर्थात् बिना विचार किये प्रतीत होता है।

विचार्यमाणरमणीयो यथा मम पद्यकादम्बर्याम्—

१५. 'अङ्गेऽनङ्गज्वरहुतवहश्चक्षुषि ध्यानमुद्रा
कण्ठे जीवः करकिसलये दीर्घशायी कपोलः।
अंसे वीणा कुचपरिसरे चन्दनं वाचि मौनं
तस्याः सर्वं स्थितमिति न तु त्वां विना क्वापि चेतः॥'

भावार्थ—विचार करने पर प्रतीत होने वाला चमत्कार मेरी 'पद्य कादम्बरी' के इस श्लोक में पाया जाएगा—

उसके अंगों में (अर्थात् अवयवों में) कामरूप अग्नि का ज्वर है, नेत्रों में ध्यान की मुद्रा है, कंठ में जीव है, अंकुर के समान (सुकोमल) हाथ पर गाल दीर्घकाल से विश्राम कर रहा है, कंधे पर वीणा है, वक्षःस्थल पर चन्दन का लेप है और वाणी में मौन है। इस प्रकार उसका सब कुछ स्थित (अर्थात् स्थिर, निश्चल) है, लेकिन मन बिना तेरे कहीं भी नहीं (अर्थात् मन स्थिर नहीं अर्थात् अस्थिर है, यह अभिप्राय)।

टिप्पणी—'मन स्थिर नहीं' इस रमणीय कल्पना की प्रतीति विचार करने पर होती है।

समस्तसूक्तव्यापी यथा मम शशिवंशे—

१६. 'माधुर्यानुभवेऽपि ते सुवदने तीक्ष्णाः कटाक्षाः परं
पर्यन्तस्थिततारका अपि नृणां रागानुबन्धोद्यताः।
नैवोज्झन्ति विवेकिनश्चपलतामुत्सेकसंवादिनी-
माश्चर्यं श्रवणौ स्पृशन्ति च पुनर्मारं च कुर्वन्त्यमी॥'

भावार्थ—समस्त सूक्ति में रहनेवाला चमत्कार मेरे 'शशिवंश' काव्य के इस श्लोक में पाया जाएगा—

'हे सुन्दरी, तेरे कटाक्षों में यद्यपि माधुर्य का अनुभव होता है तथापि वे अत्यन्त तीक्ष्ण हैं, आँखों की पुतलियाँ यद्यपि कोने में स्थिर होती हैं तथापि वे पुरुषों को अनुराग से बद्ध करने में चेष्टाशील हैं, वे (तेरे कटाक्ष) विवेकी (होते हुए भी) अपने गर्व के अनुरूप चंचलता का त्याग नहीं करते। और क्या आश्चर्य (देखिये)! वे कानों को स्पर्श करते हैं और पुनः प्रणयोद्बोधन भी करते हैं।

टिप्पणी—यह समस्त सूक्ति भावलावण्यरूप अमृत की मानों वर्षा कर रही है।

सूक्तैकदेशदृश्यः यथा मम पद्यकादम्बर्याम्—

१७. 'नित्यार्चा हृदयस्थितस्य भवतः पद्मोत्पलैश्चन्दनै-
स्त्वद्भक्तिस्त्वदनुस्मृतिश्च मनसि त्वन्नाममन्त्रे जपः।
सर्वत्रैव घनानुबन्धकलना त्वद्भावना सुभ्रूव-
स्तस्या जीवविमुक्तिरेव दिवसैर्देव! त्वदाराधनात्॥'

भावार्थ—सूक्ति के एक अंश में रहनेवाला चमत्कार मेरी पद्य-कादंबरी के इस श्लोक में पाया जाएगा—

लाल कमल के फूल, नील कमल, चन्दन आदि के द्वारा हृदय में स्थित आप का नित्य पूजन, तुम्हारी भक्ति, तुम्हारा स्मरण और तुम्हारे नाम का निरंतर जप इस प्रकार सभी जगह तुम्हारे प्रति प्रगाढ़ भक्ति और श्रद्धाभावना है। ईश्वर! उस सुन्दरी के द्वारा की जा रही तेरी आराधना से थोड़े ही दिनों में उसको इसी जन्म में (जीवविमुक्तिः) मोक्ष की प्राप्ति होगी।

टिप्पणी—इस श्लोक के चौथे पाद से काव्य-सौन्दर्य विगलित हो रहा है।

शब्दगतो यथा मम चित्रभारते नाटके

१८. 'इतश्चञ्चच्चूतच्युतमधुचया वान्ति चतुराः
समीराः सन्तोषं दिशि दिशि दिशन्तो मधुलिहाम्।

निशान्ते कान्तानां स्मरसमरकेलिश्रममुषो
विजृम्भन्ते जृम्भाकलितकमलामोदसुहृदः ॥'

भावार्थ—शब्द में रहनेवाला चमत्कार मेरे 'चित्रभारत' नामक नाटक के इस श्लोक में पाया जाएगा—

रसपूर्ण आम्रफलों से विगलित होनेवाले मधु से (शहद से) युक्त सुन्दर (सुखावह) पवन भँवरों को आनन्द देते हरएक दिशा में यहाँ से बहते हैं। विकसित कमलों के सुगन्ध के स्नेही (वे पवन) रात्रि के अन्त में प्रेमिकों की कामक्रीड़ाओं के श्रम का अपहार करके परिपुष्ट होते हैं।

टिप्पणी—यहाँ केवल ध्वन्यनुकारी शब्दों में ही चमत्कृति है।

अर्थगतो यथा मम लावण्यवत्याम्—

१९. 'सदासक्तं शैत्यं विमलजलधारापरिचितं
घनोल्लासः क्ष्माभृत्पृथुकटकपाती वहति यः।
विधत्ते शौर्यश्रीश्रवणनवनीलोत्पलरुचिः
स चित्रं शत्रूणां ज्वलदनलतापं भवदसिः ॥'

भावार्थ—अर्थ में रहनेवाला चमत्कार मेरी 'लावण्यवती' नामक कविता के इस श्लोक में पाया जाएगा, जैसे—

निरतिशय चमकनेवाली, शत्रु-राजाओं की प्रचण्ड सेनाओं का निर्दलन करनेवाली और शौर्यश्री के कानों में नवनील कमलों का वर्ण धारण करनेवाली जो तुम्हारी तलवार निर्मल जल-धाराओं से बढ़े शैत्य को (ठंडेपन को) हमेशा धारण किया करती है वही शत्रुओं को जलती हुई अग्नि का ताप देती है, यह बड़ा आश्चर्यकारक है !

टिप्पणी—इस श्लोक का अर्थ ही हृदयंगम है।

शब्दार्थगतो यथा मम पद्यकादम्बर्याम्—

२०. 'किंचित्कुञ्चितकामकार्मुकलतामैत्री विचित्रा भ्रुवो-
र्नर्मोक्तिः स्मितकान्तिभिः कुसुमिता प्रागल्भ्यगर्भा गिरः।

रागोत्सङ्गनिषङ्गिभिः सरसतासंवादिभिर्विभ्रमै-
रायुष्यं परमं तया रतिपतेः प्राप्तं मृगाक्ष्या वयः ॥'

भावार्थ—शब्द तथा अर्थ दोनों में रहनेवाला चमत्कार मेरी 'पद्य-कादम्बरी' के इस श्लोक में पाया जाएगा—

जिसकी भौंहें किंचित् वक्र और कामदेव की धनुष्लता से मैत्री रखनेवाली एवं सुन्दर हैं, जिसकी नर्म (मञ्जुल) उक्ति स्मित की कान्ति से पुष्पित है, जिसकी वाणी प्रगल्भतापूर्ण है और जिसके उत्कट प्रेमानुरूप विभ्रम अनुरागासक्त हैं, ऐसी उस हरिणाक्षी ने (सुन्दरी ने) रतिपति से दीर्घ आयुष्य की प्राप्ति कर ली।

टिप्पणी—इस श्लोक में शब्द अनुप्रासमय अतएव रमणीय है और अर्थ रमणीय है ही।

अलंकारगतो यथा मम लावण्यवत्याम्—

२१. 'स्तनौ स्तब्धौ तीक्ष्णं नयनयुगलं निम्नमुदरं
भ्रुवोर्वक्रा वृत्तिर्विहितमुनिमारोऽधरमणिः।
यथासन्ने दैवाद्दियति विषमे दुर्जनगणे
गुणी मध्ये हारः स्पृशति तव दोलातरलताम् ॥'

भावार्थ—अलङ्कार में रहनेवाला चमत्कार मेरी 'लावण्यवती' नामक कविता के इस श्लोक में पाया जाएगा—

स्तनद्वय निश्चल है, नेत्रयुग्म तीक्ष्ण (निर्दय) है, उदर गहरा है, भौंहों का वर्तन वक्र है और अधररत्न मुनियों को भी मारनेवाला है। दुर्भाग्य से इतने विषम दुर्जनों के समूह में उस प्रकार रहनेवाली एवं डोरे में गुँथी हुई माला तुम्हारे झूले की चंचलता को (सुन्दरता को) स्पर्श करती है।

टिप्पणी—यहाँ माला दुर्जनगण के दुर्जनत्व का ग्रहण नहीं करती है, इस अभिप्राय की ओर संकेत प्राप्त है। यह अभिप्राय अतद्गुण अर्थालंकार का निदर्शक है। [गुणी शब्द में श्लेष तथा दुर्जनगणे

शब्द में उत्प्रेक्षा अलंकार की भी प्रतीति होती है।] इसलिए इस श्लोक में अलंकारगत चमत्कृति है।

रसगतो यथा मम कनकजानक्याम्—

२२. 'अत्रार्यः खरदूषणत्रिशिरसां नादानुबन्धोद्यमे
रुन्धाने भुवनं त्वया चकितया योद्धा निरुद्धः क्षणम्।
सस्नेहाः सरसाः सहासरभसाः सभ्रूभ्रमाः सस्पृहाः
सोत्साहास्त्वयि तद्बले च निदधे दोलायमाना दृशः॥'

भावार्थ—रस में रहनेवाला चमत्कार मेरे 'कनकजानकी' नामक काव्य के इस श्लोक में पाया जाएगा—

यहाँ जब खर, दूषण तथा त्रिशिरस् इन दैत्यों की आवाज के अनुबन्ध से संसार व्याप्त हुआ था, तब चकित हुए तुमने योद्धा को पलभर निरुद्ध किया था। उसने तुम पर तथा उस सेना पर स्नेहपूर्ण, सरस, हास्य से चमकीले, भौंहों के विभ्रमों से युक्त, स्पृहामय, उत्साह से भरे और चंचल कटाक्ष फेंके।

टिप्पणी—यहाँ अद्भुत रस का चमत्कार प्रतीत होता है।

प्रख्यातवृत्तिगतो यथा मम शशिवंशे—

२३. 'अग्रं गच्छत, यच्छत स्वपृतनां, व्यूहक्षितिं रक्षत,
क्षोणीं पश्यत, नश्यत द्रुततरं, मा मा स्थितिं मुञ्चत।
यत्नात्तिष्ठत, पृष्ठतस्तनुभिदामुग्रा गतिः पत्त्रिणा-
मित्यासीज्जनभञ्जने रथपथे पार्थस्य पृथ्वी श्रुतिः॥'

भावार्थ—प्रख्यात व्यक्ति के वृत्त में (अर्थात् प्रख्यात व्यक्ति के चरित्र पर आधृत कथावस्तु में) रहनेवाला चमत्कार मेरे 'शशिवंश' नामक काव्य के इस श्लोक में पाया जाएगा—

'आगे बढ़ो', 'अपनी सेना का नियमन करो', 'व्यूहभूमि की रक्षा करो', 'सेना की गति-स्थिति पर ध्यान दो', 'जल्दी भागो', 'अपने-अपने

स्थान बिल्कुल मत छोड़ो', 'खड़े रहने का (ठहरने का) प्रयास करो' (शब्दशः अनुवाद—प्रयास के साथ खड़े रहो), 'पीछे से आनेवाले और शरीर को छिन्न-भिन्न कर देनेवाले बाणों की गति भयंकर (उग्र) है', इस प्रकार का बड़ा शोरगुल रथारूढ अर्जुन को, जब उसने शत्रुपक्ष का निर्दलन किया, तब सुनाई दिया ।

टिप्पणी—यहाँ प्रख्यात पुरुष जो अर्जुन उसके चरित्र पर आधृत कथांश में चमत्कार है ।

इत्युक्त एष सविशेषचमत्कृतीनां
सारः प्रकारपरभागविभाव्यमानः ।
कर्पूरवेध इव वाङ्मधुगन्धयुक्ते-
श्चैत्रासवस्य सहकाररसाधिवासः ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस प्रकार विशेषतायुक्त चमत्कारों का यह सारांश कहा गया है जो प्रभेदपरक एवं विभागसहित होने के कारण विशेषरूप से प्रकाशित होनेवाला है । वह वाणीरूप शहद के गन्ध से युक्त कपूर के समान अथवा चैत्र मास में आसव और आम का रस इन दोनों के मिश्रण के समान है ।

इति श्रीव्यासदासापराख्यक्षेमेन्द्रकृते कविकण्ठाभरणे चमत्कार-कथनं तृतीयः सन्धिः ।

भावार्थ—इस प्रकार व्यासदास इस दूसरे नाम को धारण करने-वाले क्षेमेन्द्र द्वारा रचित कविकण्ठाभरण में चमत्कार का निरूपण करने-वाली तीसरी सन्धि समाप्त हुई ।

संक्षिप्त समालोचन—शास्त्रीय विषयों का प्रतिपादन काव्यमय कारिकाओं के द्वारा सुबोध तथा रोचक करने की पद्धति पर क्षेमेन्द्र का आग्रह था ऐसा इस सन्धि की तीन कारिकाओं को पढ़कर प्रतीत होता है । किंबहुना ऐसा लगता है कि, उन्होंने सुवृत्ततिलक में जिस नियम[1]

---

१. 'तत्र केवलशास्त्रेऽपि केचित् काव्यं प्रयुञ्जते ।
तिक्तौषधरसोद्वेगे गुडलेशमिवोपरि ॥'—सुवृत्ततिलक ३·५ ।

का उपदेश किया है उसीका वे स्वयं यहाँ परिपालन कर रहे हैं। क्षेमेन्द्र ने अपने सिद्धान्त गम्भीर व गहरे चिन्तन के पश्चात् निश्चित किये ऐसा लगता है, क्योंकि उनके विवेचन-निरूपण में एक प्रकार की स्थिरता या निश्चयात्मकता प्रतीत होती है। इसके प्रमाण के लिए चमत्कार का निरूपण अवलोकनीय है। इस सन्धि की और एक विशेषता यह है कि, क्षेमेन्द्र ने हरएक प्रकार के चमत्कार के स्पष्टीकरण के लिए स्वरचित श्लोकों का उद्धरण किया है, जिससे लगता है कि, क्षेमेन्द्र ने अपने काव्यों की रचना स्वाभिमत साहित्य-सिद्धान्तों को अपने सामने रखकर की थी।

गुणदोषविभागो नाम चतुर्थः संधिः ।

अथ गुणदोषविभागः—

काव्यैकपात्रविलसद्गुणदोषदुग्ध-
पाथःसमूहपृथगुद्धरणे विदग्धाः ।
जानन्ति कर्तुमभियुक्ततया विभागं
चन्द्रावदातमतयः कविराजहंसाः ॥ १ ॥

भावार्थ—गुण-दोष के विभाग नामक चौथी सन्धि का आरंभ (अत्र होता है)—

अत्र गुण तथा दोषों के विभागों का निरूपण करते हैं—

जिस प्रकार राजहंस पक्षी एक ही पात्र में मिश्रित हुए दूध एवं पानी इन दो पदार्थों में से एक को दूसरे से अलग करने में समर्थ रहते हैं, उसी प्रकार चन्द्र के समान शुभ्र (विमल) बुद्धिवाले कविरूप राजहंस काव्यरूप एक ही पात्र में प्रतीत होने वाले (अक्षरशः चमकनेवाले) गुणरूप दूध और दोषरूप पानी के मिश्रण में से एक को दूसरे से अलग करने में समर्थ रहते हैं; वे अभ्यासशीलता के कारण (गुण तथा दोषों का) विभाग करना जानते हैं ।

टिप्पणी—यहाँ कवियों की राजहंसों से की गई तुलना प्रसिद्ध होते हुए भी रमणीय है। कोई भी काव्य परिपूर्णतया गुणसंपन्न तथा दोषरहित नहीं हो सकता। इस विचार का संकेत तो यहाँ मिलता ही है, लेकिन और भी दो विचारों के संकेत यहाँ प्राप्त होते हैं। वे हैं—कवि को गुणदोषविभाजन का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है और यह ज्ञान अभियोग से अर्थात् अभ्यास तथा परिश्रम से प्राप्त होता है। मतलब यह हुआ कि, 'अमन्द अभियोग' को क्षेमेन्द्र भी स्वीकार करते हैं। एवंच, क्षेमेन्द्र के विचारों में नवीनता नहीं है, नवीनता है विचारों के विन्यास में। कवियों की बुद्धि चन्द्रवत् विमल रहती है यह कल्पना पारंपरिक होते हुए भी सुन्दर है।

तत्र शब्दवैमल्यं अर्थवैमल्यं रसवैमल्यमिति त्रयः काव्यगुणाः।

शब्दकालुष्यं अर्थकालुष्यं रसकालुष्यं इति काव्यदोषाः। सगुणं निर्गुणं सदोषं निर्दोषं सगुणदोषं च काव्यम्।

भावार्थ—उसमें (उस गुणदोषविभाग में) शब्दों की विमलता (निर्दोषता), अर्थ की विमलता और रसकी विमलता ये तीन काव्य के गुण हैं। शब्दों का कालुष्य (अर्थात् सदोषता), अर्थ की सदोषता और रस की सदोषता ये (तीन) काव्य के दोष हैं और काव्य गुणों से पूर्ण, गुणों से रहित, दोषों से पूर्ण, दोषों से रहित और गुण एवं दोष दोनों से युक्त इस प्रकार पाँच प्रकार का होता है।

टिप्पणी—पाठकों को स्मरण होगा कि, क्षेमेन्द्र ने तीसरी सन्धि के प्रारम्भ में ही (३।१ में ही) कहा है कि, सत्कवि वस्तु की रमणीयता, शब्दों की सुन्दरता तथा अर्थों की मनोज्ञता के लिये चेष्टा करता है। ध्वन्यालोक के आधार पर यहाँ रस का अर्थ काव्यार्थ कर सकते हैं (द्रष्टव्य—'अयमेव हि महाकवेर्मुख्यो व्यापारः यद् रसादीन् एव मुख्यतया काव्यार्थीकृत्य तद्व्यक्त्यनुगुणत्वेन शब्दानां अर्थानां च उपनिबन्धनम्।' ध्वन्यालोक, हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला, ६६, १९५३, पृ० ४१४)। तो अब अर्थ यह हुआ कि, कवि शब्द, अर्थ तथा वस्तु की विमलता के लिए प्रयास करें। अब काव्य का निर्माण होता है कवि के अभिप्राय के अनुसार और उस अभिप्राय को अभिव्यक्त करने के लिए। यह कवि का अभिप्राय अर्थात् रस अथवा अर्थ विना शब्दों के तो व्यक्त ही नहीं हो सकता है। और हरएक शब्द (अर्थात् वाचक) किसी न किसी अर्थ की (अर्थात् वाच्य की) व्यक्ति करता है, शब्द विना अर्थ के रह ही नहीं सकता ('प्रतीतिरर्थेषु यतस्तं शब्दं ब्रुवते परे।' भामह—काव्यालंकार ६.७)। काव्य के संबंध में शब्दों की प्रयोज्यता तथा अप्रयोज्यता का विचार अवश्य करना पड़ता है ('वक्रवाचां कवीनां ये प्रयोगं प्रति साधवः। प्रयोक्तुं ये न युक्ताश्च तद्विवेकोऽयमुच्यते॥' भामह-

काव्यालंकार ६'२३)। इन सभी चीजों को ध्यान में रखकर क्षेमेन्द्र ने शब्द-अर्थ-रसरूप त्रयीनिष्ठ गुणदोषविचार किया है, इसको समझ लेना आवश्यक है। क्षेमेन्द्रकृत पंचविध काव्यस्वरूप पर तनिक विमर्श करना आवश्यक है। काव्य के सगुण एवं निर्दोष प्रकारों के बीच ठीक अन्तर क्या है इसका कोई खुलासा प्राप्य नहीं है। उसी प्रकार निर्गुण काव्य को सदोष कहने में क्या आपत्ति है यह भी समझ में नहीं आता। क्षेमेन्द्र की दृष्टि से गुण एवं दोष दोनों का पृथक् अस्तित्व है, उलटे वामन कहते हैं कि, दोष का अर्थ है गुण का विपर्यय ('गुणविपर्ययात्मानो दोषाः।' ॥२-१-१) क्षेमेन्द्र ने गुण तथा दोषों के सामान्य एवं विशेष लक्षण भी नहीं किये, इसलिए इस विषय में उनके विचार क्या थे यह निश्चित रूप से कहना बड़ा कठिन है।

शब्दवैमल्यं यथा मम पद्यकादम्बर्याम्—

२४. तत्कालोपनते वयस्यनिधने हा पुण्डरीकेति तन्
मोहव्यंजनमश्मभंजनमलं जीवस्य संतर्जनम्।
कुञ्जव्यापि कपिञ्जलेन करुणं निस्पन्दमाक्रन्दितं
येनाद्यापि च तैः स्मृतेन हरिणैः शष्पं परित्यज्यते ॥'

भावार्थ—शब्दों की निर्दोषता मेरी पद्यकादंबरी के इस श्लोक में पायी जाएगी—

कपिंजल ने अपने (पुण्डरीक) मित्र के निधन के बाद तुरन्त ही निःस्तब्ध होकर जो विलाप किया था उस मोहव्यंजक, पत्थरों को (भी) विदीर्ण करने में समर्थ, ज़ीव को डरानेवाले एवं लताकुंज को व्यापनेवाले विलाप के स्मरण से हिरन (मुँह में ग्रहण किये हुए) घास का अभी भी त्याग कर देते हैं।

अर्थवैमल्यं यथा मम शशिवंशे—

२५. 'स्निग्धश्यामलशाद्वले फलतरुच्छायानिपीतातपे
चञ्चद्वीचिचयोच्छलत्कलकले निःसङ्गगङ्गातटे।

अन्योन्याभिमुखोपविष्टहरिणे स्वस्थैर्यदि स्थीयते
तत्का श्रीः किमकाण्डभंगुरसुखैर्मोहस्य दत्तोऽञ्जलिः ॥'

भावार्थ—अर्थ की निर्दोषता मेरे शशिवंश काव्य के इस श्लोक में पायी जाएगी—

स्निग्ध एवं हरे घासवाले मैदानों से युक्त, फलों से पूर्ण, वृक्षों की छाया के द्वारा जहाँ का सूर्य का ताप निवारित हो रहा है और जहाँ चंचल तरंगावलियों के उच्छलन से कलकल ध्वनि उठ रही है तथा जहाँ आमने सामने मुँह करके हिरन बैठे हुए हैं ऐसे निर्जन गङ्गा के तट पर यदि स्वस्थचित्त के साथ रहने को मिले तो उस धनसंपदा की क्या जरूरत है और अचानक नष्ट होनेवाले सुखों का भी क्या उपयोग है ? मोह को हमेशा के लिये प्रणाम !

रसवैमल्यं यथा मम पद्यकादम्बर्याम्—

२६. 'अथोद्ययौ बालसुहृत्स्मरस्य श्यामाधवः श्यामलक्ष्मभंग्या ।
तारावधूलोचनचुम्बने वै लीलाविलीनाञ्जनबिन्दुरिन्दुः ॥'

भावार्थ—रस की निर्दोषता मेरी पद्यकादम्बरी के इस श्लोक में पायी जाएगी—

पश्चात् कामदेव का बालमित्र, रात्रि का पति और तारावधू के नेत्रों के चुम्बन के समय अपने से विलीन हुआ कज्जल का बिन्दु धारण करनेवाला चन्द्रमा अपने सांवले कलंक के सौन्दर्य के साथ उदित हुआ।

शब्दकालुष्यं यथा भट्टश्रीशिवस्वामिनः—

२७. 'उत्खातप्रखरा सुखासुखसखी खड्गासिता खेलगा
वैश्रृङ्खल्यखलीकृताखिलखला खे खेटकैः ख्यापिता ।
खेटादुत्खनितुं निखर्वमनसां मौख्यं मुखात्खक्खटं
निःसंख्यान्यनिखर्वसर्वमणिभूराख्यातु संख्यानि वः ॥'

भावार्थ—शब्दों की सदोषता भट्टश्रीशिवस्वामी के इस श्लोक में पायी जाएगी—

जिसमें रहनेवाली प्रखरता (कंटकादिकों की तीक्ष्णता) उखाड़ दी गयी है, जो सुख तथा असुख (अर्थात् दुःख) में सखीवत् व्यवहार करती है (अर्थात् सुखदुःखों में सहायक है), जो तलवार के द्वारा प्राप्त है (शौर्य से प्राप्त है), जो वीरों की क्रीड़ाभूमि है, जिसमें रहने वाले समस्त खलों की उच्छृङ्खलता को नष्ट कर दिया गया है, जो आकाशस्थ देवताओं के द्वारा स्तुत है और जो गर्वोद्धतों के मुँह से निकलनेवाले आत्यंतिक मूर्खता का उत्पाटन करती है, वह बहुरत्ना वसुन्धरा तुम्हारे असंख्य युद्धों का वर्णन करे।

टिप्पणी—इस श्लोकगत शब्द प्रसादशून्य, क्लिष्ट और कर्णकटु हैं, यह बात स्वतःस्पष्ट है। श्लोक का अर्थ भी तो प्रयास से बिठाना पड़ता है।

अर्थकालुष्यं यथा तस्यैव—

२८. 'पित्रापि त्रायते या न खलु खलधृताज्ञानमात्रापसात्रा
स्योनस्योनस्थितेर्भूरनुनयविरसद्दामपाशाप्यपाशा ।
वर्षावर्षाम्बुपातात् त्रुटिततृणवसत्याश्रियातां श्रियातां
सौरी सौरीष्टयाग्रे सरिदिह जनतां साभ्रुवानां भ्रुवानाम् ॥'

भावार्थ—अर्थ की सदोषता उसीके (अर्थात् भट्टश्रीशिवस्वामी के) इस श्लोक में पायी जाएगी—

जिसके प्रभाव से समस्त खलों की दुर्बुद्धि नष्ट हुई, जो किरणों से युक्त सूर्य से उत्पन्न हुई, अनुनय के कारण जो (बलराम के) दामपाश से (अर्थात् बन्धन से) मुक्त हुई और जो वर्षाऋतु के जलबिन्दुओं के कारण नष्ट हुए घासवाले प्रदेश के अन्ततक जा पहुँची, उस सूर्यकन्या यमुना नदी की रक्षा उसके पिता के द्वारा भी नहीं होती है। वह,

बलराम को अभीष्ट अपने विभव के द्वारा स्तुति करनेवाले समस्त जनों की, इस संसार में रक्षा करे।

रसकालुष्यं यथा भट्टनारायणस्य वेणीसंहारे—

भानुमत्या नकुलप्राणिस्वप्नदर्शने पाण्डवनकुलस्वैरसङ्गमेर्ष्या-सद्भावः चक्रवर्तिमहिष्याः सामान्यनीचवनितावत् ॥

भावार्थ—रस की सदोषता भट्टनारायण के 'वेणीसंहार' नामक नाटक के इस अंश में पायी जाएगी—

वेणीसंहार नाटक के द्वितीय अंक में सम्राट् दुर्योधन की पत्नी भानुमती की पुरोलिखित उक्ति पाई जाती है—'ततोऽहं तस्यातिशयितदिव्यरूपिणो नकुलस्य दर्शनेन उत्सुका जाता हृतहृदया च ॥' अर्थात् तब असामान्य, दिव्यरूपधारी उस नकुल के दर्शन से मैं पर्युत्सुक (संगमोत्सुक) हुई और मेरा चित्त उसके प्रति आकृष्ट हुआ। भानुमती की इसी उक्ति की ओर यहाँ संकेत है। क्षेमेन्द्र का अभिप्राय यह है कि, भानुमती को स्वप्न में नकुल प्राणी का दर्शन हुआ। लेकिन उस प्राणी को देखकर नकुल नामक पांडव की उसको याद आई और उसके साथ समागम की ईर्ष्या उसके मनमें पैदा हुई। अत्र भानुमती थी चक्रवर्ती सम्राट् की पत्नी। इसलिए सम्राज्ञी के मन में परपुरुषरति के होने का यह कविकृत वर्णन सामान्या, अधम कोटि की वनिता के व्यवहार जैसा हुआ है। कविकृत यह वर्णन सम्राज्ञी के अनुरूप नहीं। इसीलिए यहाँ रस की सदोषता उत्पन्न हुई है, क्योंकि यह वर्णन पाठकों को अवश्य खटकता है और विरस करता है।

सगुणं यथा कालिदासस्य— [मेघदूत, उत्तरमेघ ४१].

२९. 'श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासा-
न्हन्तैकस्थं क्वचिदपि न ते चण्डि ! सादृश्यमस्ति ॥'

भावार्थ—सगुण काव्य का नमूना कालिदास के इस श्लोक में पाया जाएगा—

मैं प्रियंगुलता में तुम्हारे शरीर के अवयवों की समानता को, भय-चकित मृगियों की दृष्टि में तुम्हारे कटाक्षों की समानता को, चंद्रमा में तुम्हारे मुँह के सौंदर्य को, मोरों के पंखों में तुम्हारे बालों की समानता को और नदी की छोटी-छोटी लहरों में तुम्हारे भौंहों के विलास की समानता को देखता हूँ। परन्तु हे चण्डि ! तुम्हारी समानता किसी एक ही वस्तु में पाई नहीं जाती। (अर्थात् तुम्हारा सौन्दर्य अनुपम है।)

निर्गुणं यथा चन्द्रकस्य—

३०.'स्तनौ सुपीनौ कठिनौ ठिनौ ठिनौ कटिर्विशाला रभसा भसा भसा।
मुखं च चन्द्रप्रतिमं तिमं तिमं अहो सुरूपा तरुणी रुणी रुणी ॥'

भावार्थ—निर्गुण काव्य का नमूना चन्द्रक के इस श्लोक में पाया जाएगा—

स्तनद्वय पुष्ट एवं कठिन है; नितंब विशाल तथा मज़बूत हैं, मुँह चंद्रमा के समान है। यह युवती (कितनी) स्वरूपशालिनी है।

टिप्पणी—इस श्लोक में ठिनौ ठिनौ, भसा भसा, तिमं तिमं, रुणी रुणी इन द्विरुक्तियों से अनुप्रास उत्पन्न हुआ है, जो निरर्थक होने के कारण प्रकृत श्लोक निर्गुण काव्य का अच्छा नमूना है, यह क्षेमेन्द्र का अभिप्राय है। यहाँ सवाल यह उठता है कि, क्या यह किसी सुबुद्ध पुरुष की रचना है ? क्या इस रचना में पागलपन नहीं दिखाई पड़ता है ? क्या यह रचना उदाहृत करने लायक है ? हमारे खयाल से क्षेमेन्द्र को इससे उचित पद्य इस विषय के स्पष्टीकरण के लिये देना चाहिये था। जिसको 'काव्य' कहना ही मुश्किल है, उसकी सगुणता-निर्गुणता कैसे निर्णीत की जा सकती है ?

सदोषं यथा भट्टश्रीशिवस्वामिनः—

३१. 'अद्यत्वावधि शिण्ढि शिण्ढि दृढतागूढानि गूढेतरां
प्रौढिं ढौकय पिण्ढि पिण्ढि च रुजं रूढापरूढां तया।
मूढं मूढममूढयस्व हृदयं लीढ्वाथ मृढ्वा तमः
सोऽव्यूढामिति च प्रभा परिवृढाव्यूढा द्रढिम्नेऽस्तु वः ॥'

भावार्थ—सदोष काव्य का नमूना भट्टश्रीशिवस्वामी के इस श्लोक में पाया जाएगा—

दृढ़ता के (अर्थात् क्लिष्टता के) कारण गूढ़ (अर्थात् दुर्बोध) होनेवाली रचनाओं को टालकर गूढ़ेतर (अर्थात् सुबोध) रचनाओं को प्रकट तथा अप्रकट (रूढापरूढां) दुःसह दोषरूप रोगों का उत्पाटन करो। हृदय की मूर्खता का निवारण करके बुद्धिमानी को प्राप्त करो। अज्ञान का निरास (मृढ्वा तमः) करके ज्ञान का आस्वादन (लीढ्वा ऽतमः) करो। ऐसा करने से विद्वानों को आज तक अभिमत (प्रतिभारूप) प्रभा तुम्हारी दृढ़ता का (स्थिर कीर्ति का) कारण होगी (अक्षरशः, कारण हो जाए)।

निर्दोषं यथा श्रीभीमसाहेः सान्धिविग्रहिकस्य इन्द्रभानोः—

३२. 'स्नातुं वाञ्छसि किं मुधैव धवलक्षीरोदफेनच्छटा-
छायाहारिणि वारिणि द्युसरितो दिक्पूरविस्तारिणि।
आस्ते ते कलिकालकल्मषमषीप्रक्षालनैकक्षमा
कीर्तिः संनिहितैव सप्तभुवनस्वच्छन्दमन्दाकिनी ॥'

भावार्थ—निर्दोष काव्य का नमूना श्रीभीमसाहि राजा के 'इन्द्रभानु' नामक सान्धिविग्रहिक के (अर्थात् समझौता तथा कलह करानेवाले विदेशमंत्री के) इस श्लोक में पाया जाएगा—

सात भुवनों को स्वच्छन्दता से व्यापन करनेवाली, कलिकाल के पापरूप कलंक का क्षालन करने में समर्थ तुम्हारी कीर्तिरूपिणी मन्दाकिनी (गङ्गा नदी) समीप ही है। तो फिर धवल (शुभ्र) समुद्र के फेन के

सौंदर्य को छिपानेवाले और दिशाओं का यथायावत् विस्तार व्यापन करने-वाले स्वर्गंगाजल में स्नान करने की इच्छा तू व्यर्थ ही क्यों रखती है ?

टिप्पणी—सप्त भुवन इस प्रकार हैं—भूः, भुवस्, स्वर्, महस्, जनः, तपः और सत्य।

सगुणदोषं यथा भट्टमयूरस्य— [सूर्यशतक १७]

३३. 'अस्तव्यस्तत्वशून्यो निजरुचिरनिशानश्वरः कर्तुमीशो
विश्वं वेश्मेव दीपः प्रतिहततिमिरं यः प्रदेशस्थितोऽपि।
दिक्कालापेक्षयासौ त्रिभुवनमटतस्तिग्मभानोर्नवाख्यां
यातः शातक्रतव्यां दिशि दिशतु शिवं सोऽर्चिषामुद्गमो वः॥

पाठभेद—(अन्तिम पङ्क्ति)–शोचिषामुद्गमो वः॥

भावार्थ—गुण तथा दोष दोनों से युक्त काव्य का नमूना भट्टमयूर के इस श्लोक में पाया जाएगा—

अस्त के (अर्थात् नाश के) व्यस्तत्व से (अर्थात् संकट से) शून्य (अर्थात् अविनाशी) [दीपक के संबंध में—स्तुत्यत्वनित्यत्वरहित], अपने तेज से रात्रि का नाश करनेवाला [दीपक के संबंध में—अपने तेज से रहित तथा दिन में नाश पानेवाला], घर के एक भाग में रहकर भी समस्त गृहगत अंधकार का नाश करनेवाले दीपक के समान एक ही दिशा में रहकर भी समस्त विश्वगत अंधकार का नाश करने में समर्थ, दिशाएँ एवं काल की अपेक्षा से ज्ञात होनेवाला, और त्रिभुवन में घूमनेवाले सूर्य की किरणों का वह उदय अभी-अभी पूर्वदिशा में हुआ है, वह तुम्हें मंगलदायक हो।

इति गदितगुणार्थी त्यक्तनिर्दिष्टदोषः
कविरुचिरपदस्थश्चक्रवर्तित्वसिद्ध्यै।
किमपि कृतविवेकः साधुमध्याधमानां
नृप इव परिरक्षेत् संकरं वर्णवृत्तेः॥ २॥

भावार्थ—जिस प्रकार कोई राजा 'चक्रवर्ती' पद की प्राप्ति के लिए उच्च, मध्यम एवं अधम स्तरों के लोगों के बीच में रहनेवाला अन्तर विवेक से ध्यान में रखता है और (चार) वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र) तथा (विविध) वृत्तियों का (व्यवसायों का) संकर से (अनिष्ट परस्पर-मिश्रण) बचाव करता है, उसी प्रकार अभी तक कहे गये (काव्यगत) गुणों की इच्छा रखनेवाला, उपरिनिर्दिष्ट दोषों का त्याग करनेवाला और कवि की दृष्टि से प्रिय प्रतिष्ठा प्राप्त कवि, 'चक्रवर्ती' पद की प्राप्ति के लिए सगुण (साधु), सगुणदोष (मध्यम) एवं सदोष (अधम) प्रकार के काव्यों में विवेकपूर्वक अन्तर करके वर्णगत व्यापारों से काव्य की रक्षा करे।

इति श्रीव्यासदासापराख्यक्षेमेन्द्रकृते कविकण्ठाभरणे गुण-दोषविभागश्चतुर्थः संधिः।

इस प्रकार व्यासदास इस दूसरे नाम को धारण करनेवाले क्षेमेन्द्र के द्वारा रचित कविकण्ठाभरण में गुण तथा दोषों का विभाग नाम की चौथी संधि समाप्त हुई।

संक्षिप्त समालोचन—क्षेमेन्द्र ने इस संधि में वैमल्य के तीन प्रकारों के स्पष्टीकरण के लिए निजी पद्यों के उद्धरण दिये हैं, लेकिन कालुष्य को समझाने के लिए अन्य कवियों के पद्य दिये हैं। वे अपनी औचित्यविचारचर्चा में अपने ही श्लोकों की कड़ी आलोचना भी करते हैं, मगर इस ग्रन्थ में उस रिवाज का पालन नहीं करते। 'चक्रवर्तित्व' यह कवि के लिए सर्वोच्च प्रतिष्ठा है। यह क्षेमेन्द्र का कहना ठीक ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि, क्षेमेन्द्र कुल कविवर्तन में विवेक को बहुत महत्त्व का समझते हैं। इसीलिए वे शायद विवेक शब्द का बार-बार प्रयोग करते हैं, जैसे विवेक की सिंचाई से परिपक्व मन कवित्व का निर्माण करता है (१।१८), कवि को विवेक (विवेचन-शक्ति) संपादन करनी चाहिए (२।२) और (अब) चक्रवर्तीपन की प्राप्ति के लिए कवि को उत्तम-मध्यम-अधम प्रकार के काव्यों में विवेक

करना चाहिए। एवंच, सर्वसाधारण तथा असाधारण काव्यों की निर्मिति के लिए विवेक आवश्यक है, यह क्षेमेन्द्र की धारणा का निचोड़ है और वह ठीक ही है। क्षेमेन्द्रप्रणीत उत्तम-मध्यम-अधम प्रकार की काव्य-विभागपद्धति का अनुगमन उत्तरकालीन ग्रन्थकारों ने किया यह साफ़ दिखाई देता है।

परिचयप्राप्तिर्नाम पंचमः संधिः ।

अथ परिचयचारुत्वमाह—

न हि परिचयहीनः केवले काव्यकष्टे
कुकविरभिनिविष्टः स्पष्टशब्दप्रविष्टः ।
विबुधसदसि पृष्टः क्लिष्टधीर्वेत्ति वक्तुं
नव इव नगरान्तर्गह्वरे कोऽप्यधृष्टः ॥ १ ॥

भावार्थ—परिचय की प्राप्ति नामक पंचम संधि की (अब शुरूआत होती है)।

अब परिचय से प्राप्त होनेवाले सौंदर्य का निरूपण करते हैं—

जिस प्रकार कोई डरपोक पुरुष पहले ही दफे बड़ी नगरी में आ पहुँचने पर वहाँ के मार्गों में टहलते समय चकराता है, उसी प्रकार शास्त्रीय ज्ञान से रहित, अभिनिवेशी, वाच्यार्थकमात्र शब्दों के द्वारा काव्यरचना करनेवाला (अक्षरशः 'स्पष्ट' शब्दों में प्रविष्ट) और केवल कष्टप्रद रचना में प्रवृत्त कोई कुकवि, जानकारों की सभा में प्रश्न पूछे जाने पर घबड़ाता है अर्थात् बोलना नहीं जानता ।

टिप्पणी—भामह से लेकर सभी काव्यशास्त्रज्ञ विविध शास्त्रों के ज्ञान के महत्त्व का प्रतिपादन बराबर करते हैं। भामह ने इस विषय का अन्तर्भाव कवि की दृष्टि से मननीय विषयों में किया है (द्रष्टव्य, काव्यालंकार १।९), दण्डी ने श्रुत में किया है (देखिए काव्यादर्श १. १०३–१०५), वामन ने काव्यांगों में किया है (देखिए, काव्यालंकारसूत्रवृत्ति १. ३. १–२०), रुद्रट ने व्युत्पत्ति में किया है (द्रष्टव्य, काव्यालंकार १।१४)। राजशेखर तो कहते हैं—'शास्त्रपूर्वकत्वात् काव्यानां पूर्वं शास्त्रेषु अभिनिविशेत । न हि अप्रवर्तितप्रदीपास्तमसि तत्त्वार्थसार्थं अध्यक्षयन्ति ।' (काव्यमीमांसा, द्वितीय अध्याय)। शास्त्रज्ञानहीन कवि के, काव्यरचना में प्रयत्न, निष्फल ठहरते हैं। कवि का काव्य स्पष्ट शब्दों से युक्त नहीं होना चाहिए, अर्थात् काव्य में व्यंग्यार्थ

की छटा अवश्य होनी चाहिए यह क्षेमेन्द्र का अभिप्राय है। 'कुकवि' का निषेध भामहादिकों ने भी किया है, जैसे—'कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः ॥' (भामह, काव्यालंकार १।१२); तथा राजशेखर कहते हैं—'वरं अकविर्न पुनः कुकविः स्यात्। कुकविता हि सोच्छ्वासं मरणम्।' (काव्यमीमांसा, पाँचवाँ अध्याय)। यहाँ परिचयहीन कुकवि की जो अधृष्ट के साथ तुलना की गयी है वह बड़ी मार्मिक एवं सुन्दर है।

तत्र तर्कव्याकरणभरतचाणक्यवात्स्यायनभारतरामायणमोक्षोपायात्मज्ञानधातुवादरत्नपरीक्षावैद्यकज्यौतिषधनुर्वेदगजतुरगपुरुषलक्षणद्यूतेन्द्रजालप्रकीर्णेषु परिचयः कविसाम्राज्यव्यंजनः ॥

भावार्थ—उसमें तर्कशास्त्र[1], व्याकरण[2], भरत का नाट्यशास्त्र[3], चाणक्य की राजनीति[4], वात्स्यायन का कामशास्त्र[5], महाभारत[6], रामायण[7], मोक्षप्राप्ति के उपाय[8], अध्यात्मशास्त्र[9], धातुशास्त्र[10], रत्नपरीक्षाशास्त्र[11], वैद्यकशास्त्र[12], ज्योतिःशास्त्र[13], धनुर्वेद[14], गजलक्षणशास्त्र[15], अश्वलक्षणशास्त्र[16], पुरुषलक्षणविद्या[17], द्यूतविद्या[18], जादूगरी[19] और प्रकीर्ण[20] इन शास्त्रों में अच्छा ज्ञान कवि को 'कविसम्राट्' पद की प्राप्ति करा देता है।

टिप्पणी—'कविसाम्राज्यव्यंजनः' पद का सम्बन्ध इसके पहले के अन्तिम श्लोक से ('चक्रवर्तित्वसिद्धये···' ॥ ४।२) है। क्षेमेन्द्रदत्त यह शास्त्रसूचि विस्तृत एवं नानाविषयसमावेशिका है। भामहादि शास्त्रकारों ने भी प्रायः इन्हीं शास्त्रों के अध्ययन का उपदेश किया है, जैसे—'शब्दश्छन्दोभिधानार्था इतिहासाश्रयाः कथाः। लोको युक्तिः कलाश्चेति मन्तव्याः काव्यगैर्ह्यमी ॥ शब्दाभिधेये विज्ञाय कृत्वा तद्विदुपासनाम्। विलोक्यान्यनिबन्धांश्च कार्यः काव्यक्रियादरः ॥' (काव्यालंकार १।९-१०)। राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में चार वेद, इतिहास, धनुर्वेद, गांधर्ववेद, आयुर्वेद, नाट्यवेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दो-

विचिति, ज्यौतिष, अलंकारशास्त्र, पुराण, आन्वीक्षिकी, मीमांसा, स्मृति-तन्त्र, महाभारत, रामायण इत्यादि शास्त्रों के अध्ययन का आदेश कवि को दिया है (द्रष्टव्य–काव्यमीमांसा दूसरा अध्याय)। वामन ने लोक, विद्या तथा प्रकीर्ण का काव्यांगों में समावेश करके स्थावरजंगमात्मक लोक का वर्तन अर्थात् लोक, शब्दस्मृति–अभिधानकोष–छन्दोविचिति–कला–कामशास्त्र–दण्डनीति अर्थात् विद्या और लक्ष्यज्ञत्व, अभियोग, वृद्धसेवा, अवेक्षण, प्रतिभा एवं अवधान अर्थात् प्रकीर्ण इस प्रकार उपर्युक्त काव्यांगों के स्पष्टीकरण किये हैं (द्रष्टव्य–काव्यालंकारसूत्राणि १.३.१-२०)। रुद्रट ने व्युत्पत्ति शब्द का अर्थ संक्षेप में बताते हुए कहा है—'छन्दोव्याकरणकलालोकस्थितिपदपदार्थविज्ञानात् । युक्तायुक्तविवेको व्युत्पत्तिरियं समासेन ।' (काव्यालंकार १-१८)। क्षेमेन्द्रकथित तर्कादि शास्त्रों के निर्देश तो उनके पूर्वसूरिओं ने किये ही हैं। क्षेमेन्द्रप्रतिपादित धातुवाद, रत्नपरीक्षा, गजलक्षण, तुरगलक्षण, पुरुषलक्षण आदि का अन्तर्भाव भामह-वामन-रुद्रटप्रभृतिप्रतिपादित लोकवृत्त में (स्थावर तथा जंगम लोक का वर्तन, उसकी स्थिति इ० में) हम कर सकते हैं। क्षेमेन्द्र की सूचि में द्यूत तथा इन्द्रजाल का उल्लेख है, उनका समावेश भामहादिनिर्दिष्ट कला में हो सकता है। क्षेमेन्द्र ने आगे प्रकीर्ण का निरूपण करते समय चित्रकला, देशस्थिति, वृक्ष, वनेच्चर, औदार्य चेतनाध्यारोप, भक्तिभाव, विवेक और शान्ति इन विषयों का विवेचन किय है। इनमें से चित्र का कला में; देश, वृक्ष, वनेच्चर, औदार्य एवं चेतनाध्यारोप का स्थावरजंगमात्मक लोकवृत्त में और भक्ति, विवेक एवं शान्ति इस त्रयी का आन्वीक्षिकी-मीमांसा में अन्तर्भाव हो जाता है। लेकिन छन्दःशास्त्र पर 'सुवृत्ततिलक' नामक स्वतंत्र तथा मौलिक ग्रन्थ लिखनेवाले क्षेमेन्द्र ने काव्यरचना से अतिशय सम्बद्ध छन्दोविच्चिति का इस शास्त्रसूचि में निर्देश क्यों नहीं किया यह एक प्रश्न ही है। वैसे उन्होंने औचित्यविचारचर्चा में भी निपाततक के औचित्यस्थानों का परामर्श किया है लेकिन कवि के अभिप्राय का वाहन जो वृत्त

(अर्थात् छन्द) है उसके औचित्य का विचार किया नहीं प्राप्त होता है। अभिधानकोष की भी परिगणना उपर्युक्त शास्त्रसूचि में अवश्य होनी चाहिए थी। उसका अभाव भी क्षेमेन्द्रकृत विवेचन में एक न्यूनता ही है।

तर्कपरिचयो यथा मम पद्यकादम्बर्याम्—

३४. 'यत्प्राप्यं न मनोरथैर्न वचसा स्वप्नेऽपि दृश्यं न यत्
तत्रापि स्मरविप्रलब्धमनसां लाभाभिमानग्रहः।
मोहोत्प्रेक्षितशुक्तिकारजतवत् प्रायेण यूनां भ्रमं
दत्ते तैमिरिकद्विचन्द्रसदृशं खे नूनमाशा कृषिः॥'

भावार्थ—तर्कशास्त्र के परिचय के लिए मेरी पद्यकादम्बरी का यह पद्य पढ़िए—

जो मनोरथों के द्वारा प्राप्य नहीं होता है, जो वाणी से प्राप्य नहीं रहता है और जिसका दर्शन स्वप्न में भी दुर्लभ है, उसकी प्राप्ति मुझे (अवश्य) होगी—ऐसा अभिमानमूलक ग्रह कामवंचित अंतःकरणों में रहता है। जिस प्रकार शुक्ति में चाँदी का ज्ञान भ्रम के द्वारा कल्पित है अथवा दृष्टिदोष के कारण आकाश में दो चंद्रमाओं के होने का भ्रम होता है, उसी प्रकार सचमुच आशारूप खेती युवकों के मन में भ्रम उत्पन्न कर देती है।

टिप्पणी—शुक्ति में होनेवाले रजत्-ज्ञान को भ्रमज्ञान कहते हैं। ज्ञान के, तर्कशास्त्र के अनुसार, यथार्थ एवं अयथार्थ ऐसे दो प्रकार होते हैं। 'तद्वति तत्प्रकारकं ज्ञानं' को यथार्थज्ञान कहते हैं, 'अतद्वति तत्प्रकारकं ज्ञानं' को अयथार्थज्ञान कहते हैं। भ्रमज्ञान का अयथार्थज्ञान में समावेश होता है। इसका कारण यह है कि, शुक्ति शुक्तित्वयुक्त होती है, रजतत्वयुक्त नहीं होती; इस लिए जब शुक्ति के बारे में (अ-रजतत्वयुक्त वस्तु के बारे में) रजतत्वप्रकारक ज्ञान होता है, तब वह विफल-प्रवृत्त्युत्पादक होने के कारण मिथ्या (अर्थात् भ्रान्त) रहता है।

व्याकरणपरिचयो यथा भट्टमुक्तिकलशस्य—

३५. 'द्विगुरपि सद्वन्द्वोऽहं गृहे च मे सततमव्ययीभावः ।
तत्पुरुष कर्म धारय येनाहं स्याम् बहुव्रीहिः ॥'

भावार्थ—व्याकरणशास्त्र के परिचय के लिए भट्ट मुक्तिकलश का यह पद्य पढ़िए—

मेरे पास दो गायें हैं । हम पुरुष और स्त्री दो हैं । मेरे घर में नित्य व्यय (खर्चा) नहीं होता । (क्योंकि मेरे पास खर्च करने के लिए पैसा ही नहीं है) । इसलिए, हे पुरुष, तू ऐसा कुछ काम कर (या ऐसा व्यवसाय मुझे बता) जिससे मेरे घर में धान की विपुलता हो जाएगी ।

टिप्पणी—इस प्रसिद्ध श्लोक में द्विगु, द्वन्द्व, अव्ययीभाव, तत्पुरुष, कर्मधारय और बहुव्रीहि इन छह समासों के नामों का प्रयोग है । समास-विचार व्याकरण का विषय होने के कारण इस श्लोक में व्याकरण-परिचय है ।

भरतपरिचयो यथा भट्टश्रीशिवस्वामिनः—

३६. 'आतन्वन् सरसां स्वरूपरचनामानन्दि विन्दूदयं
भावग्राहि शुभप्रवेशकगुणं गंभीरगर्भस्थिति ।
उच्चैर्वृत्ति सपुष्करव्यतिकरं संसारविष्कंभकं
भिन्द्याद् वो भरतस्य भाषितमिव ध्वान्तं पयो यामुनम् ॥'

भावार्थ—भरत के परिचय के लिए भट्ट श्रीशिवस्वामी के इस श्लोक को पढ़िए—

[प्रस्तुत श्लोक में यामुन जल को भरत के भाषित की (नाट्यशास्त्र की) उपमा दी गई है । अनुवाद की सुबोधता के लिए उपमेयनिष्ठ तथा उपमाननिष्ठ अनुवाद पृथक्-पृथक् दिया जा रहा है ।]

यमुना नदी का जल, जो भरताचार्य के नाट्यशास्त्र के समान है, तुम्हारा अज्ञान नष्ट करे । यमुना नदी का पानी (भिन्न-भिन्न) स्वरूपों

तथा आकारों के सरोवरों का निर्माण करता है। वह आनन्ददायक बिन्दुओं का बना हुआ है। वह हृदयस्थ भावों का ग्रहण करता है (चित्त को आल्हाद देता है)। वह अपनी गुणसम्पदा के द्वारा डुबकी लगानेवालों को आरोग्यदान करता है। वह खूब गहरा होकर बड़ी आवाज करके बहता तथा उछलता है। वह कमलयुक्त है और परमपवित्र होने के कारण संसार का निवारक (अर्थात् मोक्षदायक) है।

भरत का नाट्यशास्त्र शृंगारादि रसों से युक्त विविध स्वरूपों की नाट्य-रचनाओं को प्रकट करता (विवेचन करता) है। उसमें 'बिन्दु' नामक अत्यन्त आह्लाददायक नाटकोपांग का ज्ञान कराया गया है। वह रत्यादि भावों का ग्रहण करता है (अर्थात् उसमें रत्यादि भावों का निरूपण है)। उसमें 'प्रवेशक' नामक सुन्दर नाट्यांग का गुणविवरण और 'गर्भसन्धि' नामक गंभीर नाट्यावस्थों का निरूपण पाया जाता है। वह उच्च वृत्तियों के (विवेचन से) युक्त और पुष्करवाद्यादिकों के साथ सम्बद्ध है। वह आनन्द के प्रदान के द्वारा संसार के तापों का निवारण करता है।

टिप्पणी—यहाँ उपमान जो नाट्यशास्त्र उसका परिचय स्पष्टतया दिखाई देता है। लेकिन यहाँ एक चीज ध्यानाकर्षक है, वह यह है कि क्षेमेन्द्र ने भरतविरचित नाट्यशास्त्र-परिचय की जगह केवल 'भरत-परिचय' कहा है। यह शब्दप्रयोग 'I have read Milton' आदि वाक्यों में प्रयुक्त Milton आदि व्यक्तिनामों के प्रयोग जैसा लगता है। तो इतःपर 'मैं तुलसीदास पढ़ चुका हूँ' इस प्रकार की वाक्य-रचना को न अंग्रेज़ी ढंग की माननी चाहिये, न उसपर आक्षेप करना चाहिए! क्षेमेन्द्र ने नीचे के दो श्लोकों में भी चाणक्य एवं वात्स्यायन इन दो पुरुषों के द्वारा रचित शास्त्रग्रन्थों के सम्बन्ध में व्यक्तिनामों के उल्लेख किये हैं, यह बात विशेष अवलोकनीय है।

चाणक्यपरिचयो यथा मम पद्यकादम्बर्याम्—

३७. 'स्वामी प्रमादेन, मदेन मन्त्री, कोपेन राष्ट्रं, व्यसनेन कोषः।
छिद्रेण दुर्गं, विषमेण सैन्यं, लोभेन मित्रं क्षयं एति राज्ञाम्॥'

भावार्थ—चाणक्य के (अर्थात् चाणक्य की राजनीति के) परिचय के लिए मेरी पद्यकादंबरी के इस श्लोक को पढ़िए—

स्वामी का (राजा का) नाश गलत व्यवहार से, मन्त्री का (नाश) औद्धत्य से, राष्ट्र का (नाश) क्रोध से, धन का (नाश) व्यसनाधीनता से, किले का (नाश) छेद से, सेना का (नाश) अनियमबद्धता से और मित्र का (नाश) लोभ से होता है।

टिप्पणी—दण्ड एवं दण्डनीति के विषय में राजशेखर कहते हैं—'आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डस्तस्य नीतिर्दण्डनीतिः। तस्यां आयत्ता लोकयात्रा···।' तथा 'दण्डभयाद्धि कृत्स्नो लोकः स्वेषु स्वेषु कर्मसु अवतिष्ठते।' (काव्यमीमांसा, द्वितीय अध्याय)। दण्डनीति के ज्ञान का काव्य में क्या महत्त्व है यह यदि समझ लेना हो तो वामन का पुरोलिखित विवेचन पढ़िए—'दण्डनीतेर्नयापनययोः॥' सूत्र १-३-९ इसके ऊपर की वृत्ति है—'दण्डनीतेरर्थशास्त्रान्नयस्यापनयस्य च संविदिति। तत्र षाड्गुण्यस्य यथावत्प्रयोगो नयः। तद्विपरीतोऽपनयः। नहि तावविज्ञाय नायकप्रतिनायकयोर्वृत्तं शक्यं काव्ये निबद्धुमिति॥' षाड्गुण्य का अर्थ है, संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव एवं समाश्रय (ये छह कर्तव्य)।

वात्स्यायनपरिचयो यथा भट्टदामोदरगुप्तस्य—

३८. 'अधरे बिन्दुः कण्ठे मणिमाला कुचयुगे शशप्लुतकम्।
तव सूचयन्ति सुन्दरि! कुसुमायुधशास्त्रपण्डितं रमणम्॥'

[कुट्टनीमत-श्लोकांक ४०३]

भावार्थ—वात्स्यायन के (अर्थात् वात्स्यायन के कामशास्त्र के) परिचय के लिए भट्ट दामोदरगुप्त के इस श्लोक को पढ़िए—

हे सुन्दरी, तुम्हारे अधर पर दंतक्षत, गले पर ऐसे क्षतों की माला और स्तनद्वय पर नखक्षत ये सब चीजें कामशास्त्र में प्रवीण किसी प्रियकर द्वारा तुम्हारा उपभोग सूचित करती हैं।

टिप्पणी—काव्य में कामशास्त्र के महत्त्व का कथन वामन इस प्रकार करते हैं—'कामशास्त्रतः कामोपचारस्य ॥' १-३-८ इस सूत्र के ऊपर की वृत्ति है—'संविदित्यनुवर्तते। कामोपचारस्य संवित्कामशास्त्रत इति। कामोपचारबहुलं हि वस्तु काव्यस्येति।' ऊपर के दामोदरगुप्त के श्लोक में प्रयुक्त बिन्दु, शशप्लुतक आदि पारिभाषिक शब्दों का विवरण वात्स्यायन के कामसूत्र में पाया जाता है।

भारतपरिचयो यथा मम देशोपदेशे (४-५)—

३९. 'भगदत्तप्रभावाढ्या कर्णशल्योत्कटस्वरा।
सेनेव कुरुराजस्य कुट्टनी किं तु निष्कृपा ॥'

पाठभेद—'कर्णशल्योत्कटस्वना।'

भावार्थ—भारत के (अर्थात् महाभारत के) परिचय के लिए मेरे देशोपदेश के इस श्लोक को पढ़िए—

संपत्ति के कारण प्राप्त प्रभाव से युक्त और कानों के छेदों को बाणों के समान भिन्न करनेवाली ऊँची आवाज़वाली कुट्टनी, भगदत्त के पराक्रम से युक्त तथा कर्ण-शल्यों की बड़ी आवाज से निनादित कौरव-सेना के समान है। दोनों में अन्तर इतना ही है कि, कुट्टनी निष्कृप (अर्थात् निर्दय) है, कौरवसेना सकृप (अर्थात् कृपाचार्यसहित है)।

टिप्पणी—भामह की दृष्टि से रामायण-महाभारतादिकों का समावेश "इतिहासाश्रयाः कथाः।" (काव्यालंकार १।९) में हो जाता है। वामन-की व्यवस्था में काव्य का शरीर इतिहासादि का बना हुआ रहता है (काव्यालंकारसूत्रवृत्ति १-३-१०)। राजशेखरकृत विभाजन के अनुसार रामायण है 'परक्रिया-इतिहास' और भारत है 'पुराकल्प-इतिहास' क्योंकि, रामायण एक-नायक है और भारत है बहु-नायक। (देखिए,

काव्यमीमांसा–द्वितीयोऽध्यायः)। राजशेखर ने इतिहास को पुराण का ही विशेष भेद मानकर उसकी गणना पौरुषेय शास्त्र के अन्तर्गत की है।

रामायणपरिचयो यथा भट्टवाचस्पतेः—

४०. 'जनस्थाने भ्रान्तं कनकमृगतृष्णान्धितधिया
वचो वैदेहीति प्रतिपदमुदश्रु प्रलपितम्।
कृतालङ्काभर्तुर्वदनपरिपाटीषु घटना
मयाप्तं रामत्वं कुशलवसुता न त्वधिगता॥'

भावार्थ—रामायण के परिचय के लिए भट्टवाचस्पति के इस श्लोक को पढ़िए—

कांचनमृग की प्राप्ति की इच्छा के कारण अंध बने प्रभु राम (रावणकृत सीतापहरण का समाचार सुनकर) पागल बनकर 'हे सीते, हे सीते', शब्दों में विलाप करते तथा आँखों से आँसू बहाते पंचवटी में घूमे। उन्होंने लंकाधीश रावण के मुँह पर अनेक प्रहार किये। उन्हें लव और कुश की माता सीता की प्राप्ति हुई। मैंने भी प्रभु राम का अनुकरण किया—सोने के मृगजल के कारण अंध बना मैं 'दे दो, दे दो' पुकारते और पगपग पर आँखों से अश्रुओं क बहाते नगरी-नगरी में घूमा। अपने स्वामी को वे दुष्ट स्वभाव के होते हुए भी संतुष्ट रखने में मैंने बिलकुल कसूर नहीं किया। फिर भी मुझे कुशल (कल्याण) एवं वसु (धन) की प्राप्ति नहीं हुई। (राम के तथा मेरे बीच में यही अन्तर है।)

टिप्पणी—प्रस्तुत श्लोक काव्यगत भावना की दृष्टि से अत्यन्त सरस है।

मोक्षोपायपरिचयो यथा मम मुक्तावल्ल्याम्—

४१. 'निरासंगा प्रीतिः विषयनियमोऽन्तर्न तु बहिः
स्वभावे भावानां क्षयजुषि विमर्शः प्रतिदिनम्।

अयं संक्षेपेण क्षपिततमसामक्षयपदे
तपोदीक्षाक्षेपक्षपणनिरपेक्षः परिकरः ॥'

भावार्थ—मोक्षप्राप्ति के उपायों के परिचय के लिए मेरी मुक्तावली के इस श्लोक को पढ़िए—

संक्षेप में निःसंग प्रेम, अन्तर्बाह्य इन्द्रियनिग्रह, पदार्थों के नश्वर स्वरूप का प्रतिदिन चिन्तन—यह तमोविहीन और अक्षय (परम) पद में निविष्ट लोगों का परिकर है जो (जैन-बौद्धादि की) तपश्चर्या और दीक्षा प्रभृति आक्षेपयोग्य व्यापारों से सर्वथा निरपेक्ष है।

टिप्पणी—मोक्षोपाय तथा आत्मज्ञान का परिचय दर्शन के अन्तर्गत आता है। कवि को काव्यरचना के पूर्व दर्शन का भी अध्ययन करना चाहिए।

आत्मज्ञानपरिचितिर्यथा मम चित्रभारतनाम्नि नाटके—

४२. 'पृथुशास्त्रकथाकन्थारोमन्थेन वृथैव किम्।
अन्वेष्टव्यं प्रयत्नेन तत्त्वज्ञैर्ज्योतिरान्तरम् ॥'

भावार्थ—आत्मज्ञान के परिचय के लिए मेरे 'चित्रभारत' नामक नाटक के इस श्लोक को पढ़िए—

विस्तृत (लम्बेचौड़े) शास्त्रों की कथाओं की चर्वणा व्यर्थ ही करते रहने से क्या लाभ है? अन्तिम सत्य के ज्ञान की इच्छा रखनेवाले विवेकशील पुरुषों को अन्तःस्थ (भीतरी) प्रकाश की प्रयासपूर्वक खोज करनी चाहिए।

धातुवादपरिचयो यथा राजशेखरस्य—

४३. 'नखदलितहरिद्राग्रन्थिगौरे शरीरे
स्फुरति विरहजन्मा कोऽप्ययं पाण्डुभावः।
बलवति सति यस्मिन् सार्धसावर्त्य हेम्ना
रजतमिव मृगाक्ष्याः कल्पितान्यङ्गकानि ॥'

भावार्थ—धातुशास्त्र (Metallurgy) के परिचय के लिए राजशेखर के इस श्लोक को पढ़िए—

नखक्षतों से युक्त और हलदी के समान पीले रंग के उसके शरीर पर विरह से उत्पन्न यह कोई पीलापन स्पष्टतया प्रतीत होता है। यदि वह (पीलापन) स्पष्टतर हो जाएगा तो उस हरिणाक्षी के (सुन्दरी के) अवयवों में मानों सोने-चाँदी का मिश्रण जैसे भासमान होने लगेगा।

टिप्पणी—धातुशास्त्र-विषयक उल्लेख क्षेमेन्द्रोत्तरकालीन हेमचन्द्रादि ग्रन्थकारों के ग्रन्थों में पाये जाते हैं।

रत्नपरीक्षापरिचयो यथा भट्टभल्लटस्य—[भल्लटशतकम् ९]

४४. 'द्रविणमापदि भूषणमुत्सवे शरणमात्मभये निशि दीपकः।
बहुविधाभ्युपकारभरक्षमो भवति कोऽपि भवानिव सन्मणिः॥'

पाठभेद—'बहुविधोर्व्युपकारक्षमो।'

भावार्थ—रत्नों की परीक्षा के परिचय के लिए भट्टभल्लट के इस श्लोक को पढ़िए—

विपत्ति में द्रव्य के समान, उत्सव-समारोहादि प्रसंगों में आभूषण के समान, भय के समय आश्रय के समान एवं रात में दीपक के समान—एतावता बहुविध प्रकारों से उपयुक्त आपके जैसा उत्कृष्ट मणि (रत्न) दूसरा शायद ही होगा।

वैद्यकपरिचयो यथा मम पद्यकादम्बर्याम्—

४५. 'अङ्गं चंदनपङ्कपङ्कजबिसच्छेदावलीनं मुहु-
स्तापः शाप इवैष शोषणपटुः कम्पः सखीकम्पनः।
श्वासाः संवृततारहाररुचयः संभिन्नचीनांशुका
जातः प्रागतिदाहवेदनमहारंभः स तस्या ज्वरः॥'

भावार्थ—वैद्यक-शास्त्र के परिचय के लिए मेरी पद्यकादंबरी का यह श्लोक पढ़िए—

(नायिका का) यह (प्रणय-)ताप शाप के समान उसके शरीर के शोषण में (शरीर को शुष्क बनाने में) निपुण है। उसके शरीर पर चन्दन का लेप लगाया गया है और शरीर कमलों के केसरों से आच्छादित है, (फिर भी) वह इतना काँप रहा है कि उसको देखकर नायिका की सखियाँ काँपने लगी हैं। नायिका का श्वास-प्रश्वास उसके रेशम के वस्त्र इतस्ततः कर देनेवाले चञ्चल हार के समान अनियमित हुआ है। (उसका कामताप) शुरू में दाह करनेवाले और बाद में तीव्र वेदना देनेवाले शारीरिक ज्वर के समान हो बैठा है।

टिप्पणी—राजशेखर ने स्मरणपूर्वक आयुर्वेद का उल्लेख किया है, जैसे—'इतिहासवेदधनुर्वेदौ गान्धर्वायुर्वेदावपि चोपवेदाः।' (काव्य-मीमांसा, द्वितीय अध्याय)।

ज्योतिःशास्त्रपरिचयो यथा विद्यानन्दस्य—

४६. 'द्यामालोकयतां कलाः कलयतां छायाः समाचिन्वतां
क्लेशः केवलमङ्गुलीर्गणयतां मौहूर्तिकानामयम्।
धन्या सा रजनी तदेव सुदिनं पुण्यः स एव क्षणो
यत्राज्ञातचरः प्रियानयनयोः सीमानमेति प्रियः ॥'

भावार्थ—ज्योतिःशास्त्र के परिचय के लिए विद्यानन्द के इस श्लोक को पढ़िए—

आसमान का अवलोकन, कलाओं की गणना, छायाओं के नाप (लेना) और अङ्गुलीयों पर दिनों की गणना करना यह सारा ज्योतिर्विदों का प्रयास निरर्थक है। वह रात धन्य है, वह दिन शुभदिन है और वही क्षण सचमुच पुण्यप्रद है, जब अपने को छिपाकर (या चोरी से) घूमनेवाला प्रेमी प्रियतमा की आँखों की सीमातक पहुँचता है (अर्थात् प्रियतमा का दर्शन कर पाता है)।

टिप्पणी—यहाँ तो ज्योतिःशास्त्रपरक निर्देशों की अपेक्षा श्रृङ्गार रस की विदग्ध छटाओं पर ही पाठक का ध्यान केन्द्रित हो जाता है!

राजशेखर ने ज्यौतिःशास्त्र का उल्लेख स्मरणपूर्वक किया है।

धनुर्वेदपरिचयो यथा मम कनकजानक्याम्—

४७. 'आर्यस्यास्त्रधनौघलाघववती संधानसम्बन्धिनी
स्थाणुस्थानकसौष्ठवप्रणयिनी चित्रक्रियालङ्कृतिः।
निष्पन्देन मयातिविस्मयमयी सत्यस्थितप्रत्यया
संहारे खरदूषणत्रिशिरसामेषैव दृष्टा स्थितिः॥'

भावार्थ—धनुर्वेद के परिचय के लिए मेरी कनकजानकी के इस पद्यको पढ़िए—

मैंने आपकी वह नितान्त विस्मयोत्पादक, खड़े रहने की शैली उसी समय चुपचाप होकर देखी थी जब आपने खर, दूषण और त्रिशिरस् नामक दैत्यों का निर्दलन किया। आपकी वह शैली धनुर्धर के सौंदर्य से युक्त, (शिवजी के) 'स्थाणुस्थानक' नामक शैली के सौष्ठव से युक्त होने के कारण आकर्षक, चित्र के समान सुशोभित और सत्य की स्थिर प्रतीति करानेवाली थी।

गजलक्षणपरिचयो यथा मम कनकजानक्याम्—

४८. 'कर्णाभ्यर्णविकीर्णचामरमरुद्विस्तीर्णनिःश्वासवान्
छङ्खच्छत्रविराजिराज्यविभवद्वेषी विलीनेक्षणः।
स्मृत्वा राघव! कुञ्जरः प्रियतमामेकाकिनीं कानने
सन्त्यक्तां चिरमुक्तभोगकवलः क्लेशोष्मणा शुष्यति॥'

भावार्थ—गजलक्षण के परिचय के लिए मेरी कनकजानकी के इस पद्य को पढ़िए—

हे रघुपुत्र! जिसके दीर्घ प्रश्वास कानों के पास हिलनेवाले चामरों की पवन से सर्वत्र बिखरे जा रहे हैं, शंख तथा छत्र से शोभायमान होते हुए भी जो उस राजविभव का द्वेष करता है, जो विमनस्क हुआ है (जिसकी दृष्टि शून्य में लगी है), और जिसने विविध सुखोपभोंगो को

पहले ही त्याग दिया है ऐसा हाथी जंगल में परित्यक्त (स्थिति में) अकेली रहनेवाली अपनी प्रियतमा का स्मरण करके दुःख की गरमी से शुष्क हो रहा है।

तुरगलक्षणपरिचयो यथा मम अमृततरङ्गनाम्नि काव्ये—

४९. 'आवर्तशोभी पृथुसत्त्वराशिः फेनावदातः पवनोरुवेगः।
गंभीरघोषोऽद्रिविमर्दखेदादश्वाकृतिं कर्तुमिवोद्यतोऽब्धिः॥'

५०. 'उच्चैःश्रवाः शक्रमुपाजगाम स विश्वसाम्राज्यजयप्रदोऽश्वः।
जग्राह हेलाघनशङ्खशब्दनिवेदिताशेषशुभं तमिन्द्रः॥'

भावार्थ—अश्वशास्त्र के परिचय के लिए मेरे अमृततरंग नामक काव्य के इन श्लोकों को पढ़िए—

[इन श्लोकों में प्रयुक्त आवर्तशोभी इ० विशेषण अश्वनिष्ठ तथा अब्धिनिष्ठ—इस प्रकार उभयनिष्ठ हैं। अनुवाद के सौकर्य के लिए उनका विभाग करके अर्थ दिया जा रहा है।]

घुंघराले बालों के कारण सुन्दर, प्रचंड धैर्य की मानों राशि, फेन के समान शुभ्र, पवन के समान वेगशाली, प्रचंड (भयंकर) आवाज करनेवाला और विश्व के साम्राज्य की विजय प्राप्त करा देनेवाला उच्चैःश्रवा नामक अश्व इंद्र के समीप आया। जिसका शुभचरित्र अत्यानन्द से बजाये गये शंख की आवाज से घोषित हुआ था, उसको (अर्थात् उस अश्व को) इन्द्र ने स्वीकार किया।

अब अब्धिनिष्ठ अर्थ को स्पष्ट करेंगे—

पर्वतों के विनाश से उत्पन्न दुःख के कारण अश्वाकार को धारण करने में प्रवृत्त (उद्युक्त), लहरों के कारण सुशोभित, भयंकर बड़े प्राणियों को (अपने अन्तर्गत) समानेवाला, शुभ्र फेनवाला, पवन के समान वेगवान् और गंभीर आवाज को उत्पन्न करनेवाला महासागर।

पुरुषलक्षणपरिचयो यथा कालिदासस्य— [रघुवंशम् १।१३]

५१. 'व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः ।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः ।।'

भावार्थ—पुरुष के लक्षणों के परिचय के लिए कालिदास का यह पद्य पढ़िए—

उसकी छाती चौड़ी थी तथा कन्धे बैल के कन्धों के समान पुष्ट थे। वह शालवृक्ष के समान लंबा था एवं उसके हाथ लम्बे थे (अर्थात् वह आजानुबाहु था)। क्षत्रियोचित धर्म (ही) अपने कर्म के अनुरूप (शब्दशः समर्थ) शरीर का मानों आश्रय करके प्रकट हुआ था (वह राजा मानों मूर्तिमान् पराक्रम)।

द्यूतपरिचयो यथा चन्द्रकस्य—

५२. 'यत्रानेके क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र नैकोऽपि चान्ते ।
इत्थं नेयौ रजनिदिवसौ तोलयन् द्वाविवाक्षौ
कालः काल्या सह बहुकलः क्रीडति प्राणिसारैः ।।'

भावार्थ—द्यूतविद्या के परिचय के लिए चन्द्रक के इस श्लोक को पढ़िए—

जिस घर में (पहले) अनेक व्यक्ति थे उसमें अब एक (ही) दिखाई पड़ता है। जहाँ (पहले) एक (ही) था, वहाँ अब अनेक दिखाई देते हैं और अन्त में एक भी नहीं रहेगा। इस प्रकार अनेक कलाओं से युक्त काल अपनी पत्नी-काली के साथ, द्यूतगत अक्षद्वय के समान दिन और रात को अपने हाथ में तौलते, प्राणियों से क्रीड़ा करता है।

इन्द्रजालपरिचयो यथा श्रीहर्षस्य— [रत्नावली ४.११]

५३. 'एष ब्रह्मा सरोजे रजनिकरकलाशेखरः शंकरोऽयं
दोर्भिर्दैत्यान्तकोऽसौ सधनुरसिगदाचक्रचिह्नैश्चतुर्भिः ।

एषोऽप्यैरावणस्थस्त्रिदशपतिरमी देवि ! देवास्तथान्ये
नृत्यन्ति व्योम्नि चैताश्चलचरणरणन्नूपुरा दिव्यनार्यः ॥'

भावार्थ—जादूगरी के परिचय के लिए श्रीहर्ष के इस श्लोक को पढ़िए—

महारानी ! आसमान में कमल पर यह ब्रह्मदेव; चन्द्रकलारूप इस शिरोऽलंकार को धारण करनेवाला शंकर; इधर वह चार हाथों में क्रमशः धनुष, तलवार, गदा एवं चक्र इन चिन्हों को लिया हुआ दैत्यों का संहारक (अर्थात् विष्णु); ऐरावण नामक हाथी पर आरूढ़ देवों का राजा (इन्द्र) भी; और वे अन्य देवता; तथा ये अप्सराएँ, जिनके चंचल पैरों में पायज़ेब छुमछुम करते हैं, नाच रही हैं ।

प्रकीर्णे चित्रपरिचयो यथा भगवतो व्यासस्य—

५४. 'अतथ्यान्यपि तथ्यानि दर्शयन्ति विचक्षणाः ।
समे निम्नोन्नतानीव चित्रकर्मविदो जनाः ॥'

भावार्थ—प्रकीर्ण में चित्रकला के परिचय के लिए भगवान् व्यासर्षि के इस श्लोक को पढ़िए—

तस्वीर खींचने में निपुण पुरुष समतल फलक पर उन्नत तथा निम्न भागों का प्रदर्शन करते हैं । उसी प्रकार विचक्षण (बुद्धिमान्) पुरुष झूठ को सत्य बना सकते हैं ।

टिप्पणी—चित्र, शिल्प, नृत्य आदिकों का अन्तर्भाव कला में होता है । कला का लक्षण भामह ने इस प्रकार किया है—'कला संकलना प्रज्ञा शिल्पान्यस्याश्च गोचरः ।' (काव्यालंकार ४.३३) अर्थात् संकलन करनेवाली बुद्धि को कला कहते हैं और शिल्प आदि उसके विषय हैं । कलाशास्त्र के ज्ञान की आवश्यकता वामन द्वारा भी प्रतिपादित है । वे 'कलाशास्त्रेभ्यः ॥' (काव्यालंकारसूत्र १-३-७) सूत्र के ऊपर की वृत्ति में लिखते हैं—'कला गीतनृत्यचित्रादिकास्तासाम-

भिधायकानि शास्त्राणि विशाखिलादिप्रणीतानि कलाशास्त्राणि। तेभ्यः कलातत्त्वस्य संवित्संवेदनम्। न हि कलातत्त्वानुपलब्धौ कलावस्तु सम्यङ् निबद्धुं शक्यमिति।' मालविकाग्निमित्र, शाकुन्तल, रत्नावली आदि अनेक साहित्यकृतियों में संगीत, नृत्य, चित्र आदि कलावस्तुएँ निबद्ध दिखाई पड़ती हैं।

देशपरिचयो यथा मम शशिवंशे—

५५. 'भोजैर्भञ्जनभीरुभिर्विलुलितं व्यामीलितं मालवै-
र्मद्रैर्विद्रुतमेव यातमसकृत् मार्गादधो मागधैः।
वङ्गानामभिमन्युकङ्कणरवैर्व्रातं पुरः सूचिते
मीनैः संकुचितं परस्परधृतैर्नीरन्ध्रमन्ध्रैः स्थितम्॥'

भावार्थ—देश के परिचय के लिए मेरे 'शशिवंश' नामक काव्य के इस श्लोक को पढ़िए—

अभिमन्यु के हाथों में कड़ों की आवाज सुनकर पराजयभीरु भोज (देश के वीर) अस्तव्यस्त (अर्थात् व्यवस्थाशून्य) हो गये; माल्वों ने (अर्थात् मालव देश के वीरों ने) यःपलायन किया; मद्रों ने (मद्रदेश के वीरों ने) जल्दी भागना शुरू किया; मागधों ने (मगध देश के वीरों ने) रणभूमि से अनेक बार पीछे हटना स्वीकार किया; वंगों ने (वंग देश के वीरों ने) कदम पीछे हटाए; मीनों ने (मीन देश के वीरों ने) अपने को सिकोड़ लिया और आन्ध्र देश के वीर बीच में बिना अवकाश छोड़े बिल्कुल परस्परों को सटे खड़े रहे।

टिप्पणी—यहाँ अभिमन्यु के प्रभाव का वर्णन किया गया है, जिसमें भिन्न-भिन्न देशों के वीरों के पलायनकर्म का विवरण है। अभिमन्यु के कड़ों की आवाज सुनते ही भागे तो सभी वीर, लेकिन उन सबों का भागने का तरीका अलग-अलग था। उसका ही वर्णन यहाँ पाया जाता है। श्लोक बड़ा चमत्कारपूर्ण है इसमें सन्देह नहीं।

क्षेमेन्द्र को इस विषय की सूचना राजशेखर की काव्यमीमांसा के

सत्रहवें अध्याय से मिली होगी। वहाँ राजशेखर ने नाना देश-विभागों का वर्णन करने के पश्चात् कहा है—'तत्र देशपर्वतनद्यादीनां दिशां च यः क्रमस्तं तथैव निबध्नीयात्। साधारणं तूभयत्र लोकप्रसिद्धितश्च। ···तद्वद्वर्णनियमः। तत्र पौरस्त्यानां श्यामो वर्णः, दाक्षिणात्यानां कृष्णः, पाश्चात्यानां पाण्डुः, उदीच्यानां गौरः, मध्यदेश्यानां कृष्णः श्यामो गौरश्च।' राजशेखर ने केवल वर्णनियम का वर्णन किया है, क्षेमेन्द्र ने इसी रास्ते पर और थोड़ा आगे बढ़कर तत्तद्देशीयों के स्वभावविशेषों का संक्षिप्त वर्णन किया है। एवंच, क्षेमेन्द्र काफी मात्रा में राजशेखर के ऋणी हैं।

वृक्षपरिचयो यथा मम कनकजानक्याम्—

५६. 'जम्बूबिम्बकदम्बनिम्बबकुलप्लक्षाक्षभल्लातक-
द्राक्षाकिंशुककर्णिकारकदलीजम्बीरकोदुम्बरैः।
सा सन्तानकबिल्वतिल्वतिलकश्लेष्मातकारग्वध-
न्यग्रोधार्जुनशातनासनवनश्यामान् ददर्शाश्रमान्॥'

भावार्थ—वृक्षों के परिचय के लिए मेरी कनकजानकी के इस श्लोक को पढ़िए—

जामुन, बिम्ब, कदम्ब, नीम, बकुल, पीपल, अक्ष, भिलावा, अङ्गुर, पलास, कर्णिकार, केला, जंभीरी, गूलर, सन्तानक, बेल, तिल्व, तिल, लिसोड़ा, अमलतास, बर, अर्जुन, शातन और असना नामक वृक्षों के बन से सांवले बने आश्रमों को उसने देखा।

वनेचरपरिचयो यथा मम तत्रैव—

५७. 'वामस्कन्धनिषण्णशार्ङ्गकुटिलप्रान्तार्पिताधोमुख-
स्यन्दच्छोणितलम्बमानशशकान्पाणिस्खलच्चामरान्।
ज्यान्तप्रोतकपोतपोतनिपतद्रक्ताक्ततूणीरकान्
साऽपश्यत् करिकुम्भभेदजनिताक्रन्दान् पुलिन्दान् पुरः॥'

भावार्थ—अरण्यवासियों के (व्यवहार के) परिचय के लिए मेरी कनकजानकी के ही इस श्लोक को पढ़िए—

जिनके बाँये कंधों पर विश्रान्त वक्र आकार के धनुष के अन्तिम भागों पर अधोमुख अवस्था में रखे हुये खरगोशों के शरीरों में से खून की बूँदें गिर रही थीं, जिनके हाथों की पकड़ से चामर (प्रकार के) हिरन भाग जाने की कोशिश कर रहे थे, जिनके तूणीर (अर्थात् तीर रखने की खोलें) धनुष के दूसरे अन्तपर टंगे कबूतरों के बच्चों के शरीरों में से विगलित होनेवाले खून से युक्त थे और हाथियों की कनपटियाँ भिन्न हो जाने के कारण जो चिल्लाते थे, ऐसे वनचरों को (अरण्यवासियों को) उसने देखा।

औदार्यपरिचयो यथा मम चतुर्वर्गसंग्रहे (१.२६)—

५८. 'मान्यः कुलीनः कुलजात् कलावान्
विद्वान् कलाज्ञाद्विदुषः सुशीलः।
धनी सुशीलाद् धनिनोऽपि दाता
दातुर्जिता कीर्तिरयाचकेन॥'

भावार्थ—औदार्य का परिचय मेरे चतुर्वर्गसंग्रह के इस श्लोक में पाया जाएगा—

कुलीन (व्यक्ति) माननीय (आदरणीय) होता है, कुलीन से (अधिक आदरणीय) कलावान्। कलावंत की अपेक्षा (अधिक आदरणीय) विद्वान्। विद्वान् की अपेक्षा सच्छील पुरुष। उस सच्चरित्र की अपेक्षा धनवान् आदमी। उसकी भी अपेक्षा (अधिक आदरणीय) दानशूर व्यक्ति होता है। लेकिन जो कभी भी याचना नहीं करता है वह व्यक्ति दानशूर पुरुष की कीर्ति को भी जीत लेता है (अर्थात् वह दानशूर से भी अधिक आदरणीय है।)

टिप्पणी—'कुलजात् कलावान्, धनी सुशीलाद्' ये (श्लोकस्थ) विचार नहीं जँचते हैं। यहाँ क्षेमेन्द्र ने श्लोकान्त में अयाचकवृत्तिका जो पुरस्कार किया है वह रोचक है।

अचेतनचेतनाध्यारोपपरिचयो यथा मच्छिष्यमहाश्रीभट्टोदयसिंहस्य ललिताभिधाने महाकाव्ये—

५९. 'इह विकसदशोकास्तोकपुष्पोपहारै-
रयमतिशयरक्तः सक्तसुस्निग्धभावः।
त्रिभुवनजयसज्जः प्राज्यसाम्राज्यभाजः
प्रथयति पृथुमैत्रीं पुष्पचापस्य चैत्रः॥'

भावार्थ—अचेतन वस्तुओं पर चेतन वस्तुओं के व्यवहार के आरोप की पद्धति का परिचय मेरे शिष्य महाश्री भट्टोदयसिंह के 'ललित' नामक महाकाव्य के इस श्लोक में पाया जाएगा—

प्रेम के कारण अत्यन्त रक्त (लाल), मन में अत्यन्त दृढ़ स्नेहभाव रखनेवाला और तीनही लोकों को (पृथ्वी, स्वर्ग एवं पाताल को) जीतने के लिए प्रवृत्त यह वसंतमास विस्तीर्ण साम्राज्य का उपभोग करनेवाले मदन (कामदेव) को विकसित होनेवाले अशोकपुष्पों के अनेकानेक गुच्छों का नज़राना देकर उसके प्रति अपनी गाढ़ मैत्री का प्रदर्शन करता है।

टिप्पणी—भामह का इस विषय में कुछ अलग-सा मत दिखाई पड़ता है। अयुक्तिमत् दोष की चर्चा के प्रसंग में वे कहते हैं— 'अयुक्तिमद्यथा दूता जलभृन्मारुतेन्दवः। तथा भ्रमरहारीतचक्रवाकशुकादयः॥ अवाचोऽव्यक्तवाचश्च दूरदेशविचारिणः। कथं दूत्यं प्रपद्येरन्निति युक्त्या न युज्यते॥ यदि चोत्कण्ठया यत्तदुन्मत्त इव भाषते। तथा भवतु भूम्नेदं सुमेधोभिः प्रयुज्यते॥' (काव्यालंकार–१।४२-४४)। भामह का मन्तव्य यह है कि, जो वाणीविहीन हैं अर्थात् जो अचेतन हैं वे चेतनों के दूतकार्यादि कर्म करने में कैसे समर्थ हो सकते हैं? इस प्रकार के वर्णन को भामह उन्मत्त-प्रलपित मानते हैं। बुद्धिमान् कवियों के द्वारा किये गये इस प्रकार के प्रयोग उनको पसन्द नहीं हैं। लेकिन अचेतन पर चेतन का अध्यारोप करके वर्णन करने का प्रकार

संस्कृत तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के वाङ्मय में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। क्षेमेन्द्रोद्धृत उपर्युक्त श्लोक भट्टोदयसिंह का है। इसी व्यक्ति के लिए क्षेमेन्द्र ने 'औचित्यविचारचर्चा'-ग्रन्थ का प्रणयन किया था (देखिए—'श्रीरत्नसिंहे सुहृदि प्रयाते शार्वं पुरं श्रीविजयेराशि। तदात्मजस्योदयसिंहनाम्नः कृते कृतस्तेन गिरां विचारः ॥'—औचित्य-विचारचर्चोपसंहारश्लोकांक २)। भट्टोदयसिंह क्षेमेन्द्र का शिष्य तथा 'ललित' एवं 'भक्तिभव' नामक दो महाकाव्यों का रचयिता था।

भक्तिपरिचयो यथाऽस्यैव भक्तिभवनाम्नि महाकाव्ये—

६०. 'बाल्यादेव निरर्गलप्रणयिनी भक्तिर्भवानीपतौ
जन्मायासविकासवासितमनःसंवाससंदायिनी।
प्रायः प्राक्तनकर्मनिर्मितमहामोहप्ररोहापहा
भव्यानां भवतीतिभंजनसखी सञ्जायते सन्मतिः ॥'

पाठभेद—जन्माभ्यास (द्वितीय पाद)।

भावार्थ—भक्तिभाव के परिचय के लिए उसीके (अर्थात् भट्टोदयसिंह के) 'भक्तिभव' नामक महाकाव्य के इस श्लोक को पढ़िए—

जन्म के कष्ट (तथा जन्मोत्तर जीवन) के विकास से सुसंस्कृत मन में शंकरविषयक अनिर्बन्ध एवं उत्कट भक्तिभाव को पुष्ट करनेवाली (शब्दशः भक्तिभाव के अधिवास को अवसर देनेवाली), प्रायः पूर्वजन्म के कर्मों से उत्पन्न महामोहरूप अंकुर का नाश करनेवाली और संसार की भीति का संहार करने में साहाय्य करनेवाली सद्बुद्धि भाग्यशाली व्यक्तियों को बचपन से ही प्राप्त होती है।

विवेकपरिचयो यथा मच्छिष्यराजपुत्रलक्ष्मणादित्यस्य—

६१. 'आशापाशविमुक्तियुक्तममलं संतोषमान्यं मनः
सेवायासविवर्जितं विहरणं मायाविहीनं वचः।

चण्डीशार्चनमात्मशुद्धिजननी गङ्गेव सत्सङ्गतिः
सोऽयं सन्तरणे परः परिकरः संसारवारांनिधेः ॥'

भावार्थ—विवेक के परिचय के लिए मेरे शिष्य राजपुत्र लक्ष्मणादित्य के इस श्लोक को पढ़िए—

आशा के बन्धनों से पूर्णतया मुक्त, निर्मल एवं संतोष के कारण आदरणीय मन; सेवा के कष्टों से रहित आचरण; असत्य से रहित वाग्व्यवहार; शंकर जी की पूजा-अर्चा; गंगाजी के समान आत्मशुद्धि की मातारूप सज्जन-संगति—इन सबों का यह श्रेष्ठ समुदाय संसाररूप जलनिधि (सागर) के उस पार जाने में (उपयुक्त) ठहरता है। (यह श्रेष्ठ समुदाय मानों संसाररूप सागर के उस पार जाने में उपयुक्त नाव है।)

प्रशमपरिचयो यथा मम चतुर्वर्गसंग्रहे [४.२३]—

६२. 'चित्तं वातविकासिपांसुसचिवं रूपं दिनान्तातपं
भोगं दुर्गतगेहबन्धचपलं पुष्पस्मितं यौवनम्।
स्वप्नं बन्धुसमागमं तनुमपि प्रस्थानपुण्यप्रपां
नित्यं चिन्तयतां भवन्ति न सतां भूयो भवग्रन्थयः ॥'

भावार्थ—प्रशान्ति के परिचय के लिए मेरे चतुर्वर्गसंग्रह के इस श्लोक को पढ़िए—

मन अर्थात् पवन के द्वारा बहाये गये धूलिकणों का मित्र; सौन्दर्य अर्थात् दिन के अन्त में अस्त होनेवाला सूर्य; सुखोपभोग अर्थात् दुःस्थिति प्राप्त घर की हिलनेवाली संधियाँ; यौवन अर्थात् फूलों का खिलना; स्वप्न अर्थात् रिश्तेदारों से मुलाकात और शरीर अर्थात् आनेजाने के रास्ते में पुण्यप्रद पनसाला है। इस प्रकार नित्य चिन्तन करनेवाले सज्जनों को ये संसारग्रंथियाँ बारबार बन्धन में नहीं डालती हैं (अर्थात् जन्ममृत्यु के अविरत चलनेवाले चक्र से वे हमेशा के लिए छुटकारा पाते हैं)।

इत्युक्ता रुचिरोचिता परिचयप्राप्तिर्विभागैर्गिरां
दिङ्मात्रेण विचित्रवस्तुरचनामैत्रीपवित्रीकृता ।
यद्यस्त्यत्र नवोपदेशविषये लेशोऽप्युपादेयता
तत् सद्भिर्गुणकौतुकादवसरः श्रोतुं समाधीयताम् ॥ २ ॥

भावार्थ—इस प्रकार विभिन्न शास्त्रों से सुन्दर एवं अनुरूप परिचय कैसे कर लेना चाहिए इसका उपदेश हमने सूचनामात्र रूप में वाणी के विभागों के द्वारा किया है। (यह उपदेश) विविध (तथा सुन्दर) विषयपरक रचनाओं की (श्लोकों की) सहायता से बड़ा पवित्र (अतएव श्रवणीय) हुआ है। यदि इस अभिनव उपदेश के विषय में तनिक भी ग्राह्यता होगी तो संतसज्जन गुणविषयक कौतूहल से इसके (इस उपदेश के) श्रवण के लिए अपना (थोड़ा) समय दे दें।

टिप्पणी—यह परिचय-प्राप्तिपरक उपदेश रुचिरोचित है, इस कथन में क्षेमेन्द्र के आत्मप्रत्यय की ही प्रतीति आती है (कालिदास 'बलवदपि शिक्षितानां आत्मनि अप्रत्ययं चेतः' कहते हैं, क्षेमेन्द्र उसके विपरीत दिखाई पड़ते हैं।)। 'शास्त्रं काव्यं शास्त्रकाव्यं काव्यशास्त्रं च भेदतः। चतुष्प्रकारः प्रसरः सतां सारस्वतो मतः ॥' (सुवृत्ततिलक ३.२) इस क्षेमेन्द्रवचन के आधार पर हमने ऊपर 'विभागैर्गिरां' का स्पष्टीकरण 'वाणी के विभागों के द्वारा' इन शब्दों से किया है। दिङ्मात्रेण शब्द से क्षेमेन्द्र की विनीत वृत्ति का पता चलता है। सिवाय, केवल अट्ठाईस शास्त्रों के परिचय से कवि का काम चल जाता है यह बात नहीं, कवि को और भी अनेक शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए, इस अर्थ की भी सूचना दिङ्मात्रेण शब्द से मिलती है। यदि ऐसा हो तो प्रश्न उठता है कि क्षेमेन्द्र ने समस्त शास्त्रों का निरूपण क्यों नहीं किया ? वे यहीं क्यों विरमित हो गए ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि, समस्त शास्त्रों का निरूपण करना असम्भव है और अनावश्यक भी। क्योंकि जिज्ञासु व्यक्ति अन्यान्य शास्त्रों का अध्ययन, क्षेमेन्द्रकृत विवेचन

से स्फूर्ति पाकर, अपने आप कर लेगा और दूसरी बात यह है कि, बुद्धिमान् पुरुषों को संक्षिप्त विवेचन को पढ़कर भी समस्त विषय का ज्ञान हो जाता है। इतना ही नहीं, संक्षिप्त विवेचन को अन्यत्र कैसे लागू किया जाए इस को भी बुद्धिमान् पुरुष समझ सकते हैं। ध्वन्यालोककार कहते हैं—'दिङ्मात्रं तूच्यते येन व्युत्पन्नानां सचेतसाम्। बुद्धिरासादितालोका सर्वत्रैव भविष्यति।' (ध्वन्यालोक, हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला, ६६, १९५३, पृ० १२५)। केवल क्षेमेन्द्र ही नहीं, बल्कि भामह से लेकर जगन्नाथ पण्डित तक के सारे शास्त्रकार प्रधान विषय के कतिपय अंशों का सोदाहरण विवेचन करने के बाद 'अनया एव दिशा अन्यत् स्वयं अभ्यूह्यम्।' इस आशय के शब्दों के द्वारा विषय-विवेचन का उपसंहार करते दिखाई पड़ते हैं। संस्कृत शास्त्रकार पाठकों की बुद्धि को अकारण खिन्न (उद्विग्न) करना पसन्द नहीं करते थे और इसीलिये वे संक्षेप में विवेचन करके उपसंहार करते थे। क्षेमेन्द्रदत्त उदाहरणश्लोक उचित एवं अर्थसुन्दर हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। प्रस्तुत श्लोक का अन्तिम चरणद्वय क्षेमेन्द्र की उदाराशयता तथा वृत्ति-मधुरता का अच्छा परिचायक है।

कृत्वा निश्चलदैवपौरुषमयोपायं प्रसूत्यै गिरां
क्षेमेन्द्रेण यदर्जितं शुभफलं तेनास्तु काव्यार्थिनाम्।
निर्विघ्नप्रतिभाप्रभावसुभगा वाणी प्रमाणीकृता
सद्भिर्वाग्भवमंत्रपूतविततश्रोत्रामृतस्यन्दिनी ॥ ३ ॥

भावार्थ—वाणी के (अर्थात् काव्य के) निर्माण के लिए दैवी (अर्थात् प्रथम सन्धि में वर्णित सरस्वती की क्रियामातृका का जप एवं सरस्वती का ध्यान) तथा मानवी उपायों का निश्चल बुद्धि से (अर्थात् दृढ़ निश्चय से) अवलंब करके क्षेमेन्द्र को जिस शुभफल की (अर्थात् पुण्य की) प्राप्ति हुई है वह शुभफल काव्य के निर्माण की इच्छा रखनेवालों को प्राप्त हो। विपत्तिहीन (निर्विघ्न) प्रतिभा के प्रभाव के

कारण सुभग (सौंदर्यसंपन्न) बनी हुई तथा वागुत्पत्ति के बीज मंत्र के उच्चारण से परमपवित्र हुए कानों में अमृत की वृष्टि करनेवाली उनकी (अर्थात् काव्यार्थियों की) वाणी सज्जनों के द्वारा प्रमाण मानी जाए।

टिप्पणी—क्षेमेन्द्रप्रदर्शित 'यदर्जितं शुभफलं तेनास्तु काव्यार्थिनाम्।' यह शुभकामना उनके अन्य ग्रंथों में भी पाई जाती है, जैसे—'चतुर्वर्गोपदेशेन क्षेमेन्द्रेण यदर्जितम्। पुण्यं तेनास्तु लोकोऽयं चतुर्वर्गस्य भाजनम्।' (चतुर्वर्गसंग्रह–४-२९); 'स्तुतिसंकीर्तनाद् विष्णोर्विपुलं यन्मयार्जितम्। तेनास्तु सर्वलोकानां कल्याणकुशलोदयः ॥' (दशावतार चरित-उपसंहारश्लोकांक ४)। क्षेमेन्द्र ने सरस्वती के प्रसाद के लिए दैवी तथा मानुष उपायों का अवलंब किया था, इस विचार का विमर्श हम भूमिका में कर चुके हैं। सत्कवियों की वाणी प्रातिभ प्रभाव के कारण सौंदर्यमयी बनती है और श्रोताओं के कानों में अमृत की वर्षा करती है, यह कल्पना ही बड़ी मनोरम एवं आल्हाददायक है।

इति श्रीव्यासदासापराख्यक्षेमेन्द्रकृते कविकण्ठाभरणे परिचय-प्राप्तिः पञ्चमः संधिः।

इस प्रकार व्यासदास इस अन्य नाम को धारण करनेवाले क्षेमेन्द्र के द्वारा रचित कविकण्ठाभरण में परिचय की प्राप्ति नामक पंचम संधि समाप्त हुई।

काश्मीरेषु पृथुप्रतापसवितुः कीर्त्यंशुतारापतेः
प्रौढारातिवनानलस्य धनदस्येन्द्रस्य भूमण्डले।
विश्वाकारवतः पुनः कलियुगे विष्णोरिवोत्साहिनो
राज्ये श्रीमदनन्तराजनृपतेः काव्योदयोऽयं कृतः ॥

इति कविकण्ठाभरणं समाप्तम्।

भावार्थ—प्रचण्ड पराक्रमरूप सूर्य, कीर्तिरूप किरणों से युक्त चन्द्रमा, बलवान् शत्रुओं के समूह को दग्ध करनेवाले अग्नि, पृथ्वी पर (साक्षात्) कुबेर और इन्द्र (रूप), कलियुग में पुनः आविर्भूत हुए

और विश्वाकारयुक्त विष्णु के समान उत्साही अनन्तराज नामक राजा के राज्य में काश्मीर में इस काव्य की रचना हुई।

इस प्रकार कविकण्ठाभरण ग्रंथ समाप्त हुआ।

टिप्पणी—औचित्यविचारचर्चा, कविकण्ठाभरण तथा सुवृत्ततिलक इन तीनों शास्त्रीय ग्रंथों की रचना अनन्तराज के ही राज्य में हुई। इस विषय में देखिए—'यस्यासिः परिवारकृत् त्रिभुवनप्रख्यातशीलश्रुतेः सर्वस्यावनतेन येन नितरां प्राप्ता विशेषोन्नतिः। आशाः शीतलतां नयत्यविरतं यस्य प्रतापानलस्तस्य श्रीमदनन्तराजनृपतेः काले किलायं कृतः ॥' (औचित्यविचारचर्चोपसंहार-श्लोकांक ३); तथा 'क्षेमेन्द्रेण प्रणयिविपदां हर्तुराश्चर्यकर्तुर्भूभृद्भर्तुर्भुवनजयिनोऽनन्तराजस्य राज्ये ॥'—सुवृत्ततिलकम्–३।४०। क्षेमेन्द्र विष्णुभक्त थे और इसीलिए उन्होंने इस उपसंहारपरक श्लोक में अपने इष्टदेवता का उल्लेख जानबूझकर किया है। राजा की विष्णु के साथ तुलना करने का रिवाज पुराना है (उदा० 'ना विष्णुः पृथिवीपतिः।')। अनन्तराजा का राज्यकाल सन् १०२८ से १०६३ तक पड़ता है। तात्पर्य यह हुआ कि, क्षेमेन्द्र की शास्त्रोपासक एवं शास्त्रसर्जक बुद्धि का प्रकर्ष इसी काल की अवधि के दरमियान हुआ। कविकण्ठाभरण तथा सुवृत्ततिलक की रचना अनन्तराज के 'राज्य में' हुई, पर औचित्यविचारचर्चा का प्रणयन अनन्तराज के 'काल में' हुआ, यह भेद इतिहास की दृष्टि से विमर्शनीय है। लेकिन यहाँ उस विमर्श की चर्चा को हम अप्रस्तुत मानते हैं।

परिशिष्ट 'अ'

ग्रन्थस्थ कारिकाओं की अकाराद्यनुक्रमणिका

परिशिष्ट 'आ'

ग्रन्थस्थ उदाहरणश्लोकों की ग्रन्थकार नामों की अकाराद्यनुक्रमसूची।

कविनाम	श्लोकारम्भ	श्लोकांक	काव्यनाम	संदर्भ	पृष्ठांक
अमरक	गन्तव्यं यदि	८	अमरुशतक	१६३	६१
आर्यभट्ट	शब्दैर्निसर्ग-	१०	—	—	६२
इन्द्रभानु	स्नातुं	३२	—	—	९४
उत्पलराजदेव	मात्सर्यतीव्र	५	—	—	५९
उदयसिंह	इह विकसद-	५९	ललित	—	११७
,,	बाल्यादेव	६०	भक्तिभव	—	११८
कालिदास	रक्तस्त्वं	१३	—	—	७७
,,	वागर्थाविव	२	रघुवंश	१/१	५४
,,	व्यूढोरस्को	५१	,,	१/१३	११२
,,	श्यामास्वङ्गं	२९	मेघदूत	उत्तरमेघ ४१	९२
क्षेमेन्द्र	अग्रं गच्छत	२३	शशिवंश	—	८४
,,	अङ्गं	४५	पद्यकादम्बरी	—	१०८
,,	अङ्गेऽनङ्ग-	१५	पद्यकादम्बरी	—	८०
,,	अत्रार्यः	२२	कनकजानकी	—	८४
,,	अथोद्ययौ	२६	पद्यकादम्बरी	—	९०
,,	आर्यस्यास्त्र-	४७	कनकजानकी	—	११०
,,	आवर्तशोभी	४९	अमृततरङ्ग	—	१११
,,	इतश्चश्चच्चूत	१८	चित्रभारत	—	८१
,,	उच्चैःश्रवाः	५०	अमृततरङ्ग	—	१११

कविनाम	श्लोकारम्भ	श्लोकांक	काव्यनाम	संदर्भ	पृष्ठांक
क्षेमेन्द्र	कर्णाभ्यर्ण	४८	कनकजानकी	—	११०
,,	किञ्चित्कुञ्चित	२०	पद्यकादम्बरी	—	८२
,,	चित्तं	६२	चतुर्वर्गसंग्रह	४-२३	११९
,,	जम्बूबिम्ब	५६	कनकजानकी	—	११५
,,	तत्कालोपनते	२४	पद्यकादम्बरी	—	८९
,,	नित्यार्चा	१७	,,	—	८१
,,	निरासङ्गा	४१	मुक्तावली	—	१०६
,,	पृथुशास्त्र	४२	चित्रभारत	—	१०७
,,	भगदत्त	३९	देशोपदेश	४-५	१०५
,,	भोजैर्भञ्जन	५५	शशिवंश	—	११४
,,	माधुर्यानुभवे	१६	,,	—	८०
,,	मान्यः कुलीनः	५८	चतुर्वर्गसंग्रह	१-२६	११६
,,	यत्प्राप्यं	३४	पद्यकादम्बरी	—	१०१
,,	वामस्कन्ध	५७	कनकजानकी	—	११५
,,	शूराः सन्ति	१४	शशिवंश	—	७९
,,	सदासक्तं	१९	लावण्यवती	—	८२
,,	स्तनौ स्तब्धौ	२१	,,	—	८३
,,	स्निग्धश्यामल	२५	शशिवंश	—	८९
,,	स्वामी प्रमादेन	३७	पद्यकादम्बरी	—	१०४
,,	हंहो स्निग्धसखे	९	—	—	६१
चक्रपाल	सरस्यामेतस्यां	७	—	—	६०
चन्द्रक	यत्रानेके	५२	—	—	११२
,,	स्तनौ	३०	—	—	९३
दामोदरगुप्त	अधरे बिन्दुः	३८	कुट्टनीमत	४०३	१०४
बाण	कटु क्वणन्तो	११	कादम्बरी	पूर्वभाग ६	६२

कविनाम	श्लोकारम्भ	श्लोकांक	काव्यनाम	संदर्भ	पृष्ठांक
भल्लट	द्रविणमापदि	४४	भल्लट-शतक	५	१०८
,,	ननु आश्रय-	४	,,	४	५८
मयूर	अस्तव्यस्तत्व-	३३	सूर्यशतक	१७	९५
माल्वरुद्र	वेल्लत्पल्लव	१२	—	—	७६
मुक्ताकण	यथा रन्ध्रं	६	—	—	५९
मुक्तिकलश	द्विगुरपि	३५	—	—	१०२
राजशेखर	नखदलित-	४३	—	—	१०७
लक्ष्मणादित्य	आशापाश	६१	—	—	११८
वाचस्पति	जनस्थाने	४०	—	—	१०६
विद्यानन्द	द्यामालोकयतां	४६	—	—	१०९
व्यास	अतथ्यान्यपि	५४	—	—	११३
शिवस्वामी	अद्यत्वावधि	३१	—	—	९४
,,	आतन्वन्सरसां	३६	—	—	१०२
,,	उत्खातप्रखरा	२७	—	—	९०
,,	पित्रापि	२८	—	—	९१
हर्ष	एष ब्रह्मा	५३	रत्नावली	४-११	११२
—	आनन्दसन्दोह	१	—	—	५४
—	वाण्यर्थाविव	३	—	—	५४

[सूचना—द्वितीय संधिगत 'इदं कविवरैः...' इत्यादि श्लोक विचारपरक पद्य है, उदाहरणपद्य नहीं, इसलिए उसका समावेश इस सूची में नहीं किया गया है ।]

परिशिष्ट 'इ'

क्षेमेन्द्र के निजी उदाहरणश्लोकों की काव्यनामानुक्रम के अनुसार सूची।

काव्यनाम	संदर्भ	श्लोकारंभ	श्लोकांक	पृष्ठांक
१. अमृततरङ्ग	—	आवर्तशोभी	४९	१११
,,	—	उच्चैःश्रवाः	५०	११२
२. कनकजानकी	—	अत्रार्यः	२२	८४
,,	—	आर्यस्यास्त्र-	४७	११०
,,	—	कर्णाभ्यर्ण-	४८	११०
,,	—	जम्बूनिम्न-	५६	११५
,,	—	वामस्कन्ध-	५७	११५
३. चतुर्वर्गसंग्रह	४·२३	चित्तं	६२	११९
,,	१·२६	मान्यः कुलीनः	५८	११६
४. चित्रभारत नाटक	—	इतश्चञ्चच्चूत-	१८	८१
,,	—	पृथुशास्त्र-	४२	१०७
५. देशोपदेश	४·५	भगदत्त-	३९	१०५
६. पद्यकादम्बरी	—	अङ्गं	४५	१०८
,,	—	अङ्गेऽनङ्ग	१५	८०
,,	—	अथोद्ययौ	२६	९०
,,	—	किञ्चित्कुञ्चित	२०	८२
,,	—	तत्कालोपनते	२४	८९
,,	—	नित्यार्चा	१७	८१

परिशिष्ट 'ई'

क्षेमेन्द्रोल्लिखित ग्रन्थकारों का संक्षिप्त परिचय

१. **अमरक**—प्रसिद्ध अमरुशतक के कर्ता। अनेक काव्यशास्त्रज्ञों ने आपके पद्यों को उदाहृत किया है। आप पूज्यपाद शंकराचार्य माने जाते हैं। समय ७वीं सदी।

२. **आर्यभट्ट**—प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् और आर्यसिद्धान्त, दशगीति-सूत्र तथा आर्याशतक नामक ग्रन्थों के प्रणेता। जन्म-तिथि सन् ५७६। आप ज्योतिर्विद् होते हुए भी अच्छे कवि थे।

३. **इन्द्रभानु**—आपका अपर नाम रिस्सु था। राजतरंगिणी के (६-१७८) अनुसार आप उदभण्डपुर (गांधार) के राजा भीमसाहि के विदेश-मंत्री थे।

४. **उत्पलराजदेव**—अर्थात् धारानगरी के प्रसिद्ध राजा मुञ्ज। वाक्पतिराज प्रथम, श्रीवल्लभ, पृथ्वीवल्लभ और अमोघवर्ष ये आपके अपर नाम थे। आपका राज्यकाल सन् ९७४—९९७ था। आप प्रसिद्ध राजा भोज के चाचा थे। आप स्वयं कवि एवं कवियों तथा विद्वानों के आश्रयदाता थे। कल्याण के चालुक्यवंशीय राजा द्वितीय तैलपने आपको पराजित किया और बाद में मार डाला।

५. **उदयसिंह**—क्षेमेन्द्र के मित्र रत्नसिंह के पुत्र और क्षेमेन्द्र के शिष्य। ललित और भक्तिभव नामक महाकाव्यों के कर्ता। समय खिस्त की ग्यारहवीं सदी।

६. **कालिदास**—भारत के शेक्स्पियर माने गये जगद्विख्यात महाकवि एवं नाटककार। आपकी प्रसिद्ध साहित्यकृतियाँ—नाटक-

१ मालविकाग्निमित्र, २ विक्रमोर्वशीय और ३ अभिज्ञानशाकुन्तल; लघु-काव्य–१ ऋतुसंहार, २ मेघदूत; महाकाव्य–१ कुमारसंभव तथा २ रघुवंश। और भी अनेक ग्रंथ कालिदास के द्वारा रचित माने जाते हैं, जैसे कुन्तलेश्वरदौत्य, लेकिन उनके बारे में सन्देह है। आपका काल भी अनिश्चित है, लेकिन अनेक विद्वानों के मत के अनुसार आपका उत्कर्षकाल चौथी सदी का अन्त एवं पाँचवी सदी का प्रारम्भ है।

७. **चक्रपाल**—मुक्ताकण के भाई। चल्क, चक्र ये आपके अन्य नाम थे। अवन्तिवर्म राजा के आश्रित। समय खिस्त की ९वीं सदी।

८. **चन्द्रक**—अपर नाम चन्दक। काश्मीर के तृतीय राजा तुञ्जीर के दरबार के कवि (सन् ३१९)। अभिनवगुप्त एवं धनिक द्वारा भी उल्लिखित। आप कृष्णद्वैपायन के अवताररूप महाकवि माने जाते थे।

९. **दामोदरगुप्त**—काश्मीर के महाराजा जयापीड़ के (समय सन् ७७९–८१३) मंत्री तथा मित्र। वेश्याव्यवसाय पर आधृत काव्य 'कुट्टनीमत' यह आपकी कृति। सुभाषितसंग्रहकारों तथा काव्यशास्त्रज्ञों के द्वारा आपके अनेक श्लोक उद्धृत किये गये हैं।

१०. **बाण**—सुप्रसिद्ध कादम्बरी और हर्षचरित ग्रन्थों के कर्ता एवं प्रसिद्ध संस्कृत गद्य-लेखक। आप कनौज के श्रीहर्ष के आश्रित थे। समय खिस्त की ७वीं सदी। उपर्युक्त दो ग्रन्थों के अतिरिक्त 'चण्डीशतक' काव्य, 'पार्वतीपरिणय' नाटक और अन्य ग्रन्थ भी आपके लिखे माने जाते हैं, लेकिन उनके बारे में संदेह है।

११. **भल्लट**—काश्मीर के राजा शंकरवर्मा के (समय सन् ८८४–९०२) दरबार के कवि। आपकी रचना 'भल्लटशतक' है जिसमें उपदेश-परक सूक्तियाँ हैं।

१२. **मयूर**—सम्राट् हर्षवर्द्धन के दरबार के कवि और सुप्रसिद्ध बाणभट्ट के श्वशुर। कुष्ठरोग से मुक्त हो जाने के लिए आपने 'सूर्यशतक' की रचना की; समय खिस्त की ७वीं सदी।

१३. **मालवरुद्र**—मालवा प्रांत के निवासी एवं नवम सदी के एक उपेक्षित कवि।

१४. **मुक्ताकण**—रामकण्ठ और चक्रपाल के बड़े भाई। आप राजा अवन्तिवर्मा के दरबार में थे। समय खिस्तकी ९वीं सदी।

१५. **मुक्तिकलश**—विक्रमांकदेवचरित एवं चौरपंचाशिका नामक ग्रन्थों के कर्ता जो बिल्हण उनके आप प्रपितामह। नैष्ठिक याजक और कवि। समय १०वीं सदी।

१६. **राजशेखर**—संस्कृत-प्राकृत भाषाओं में काव्यरचना करनेवाले प्रसिद्ध कवि। विद्वानों एवं कवियों के वंश में जन्म; महाराष्ट्र के निवासी; पिता का नाम दुर्दुक तथा माता का नाम शीलवती। आप अपने को 'यायावरीय राजशेखर' कहते हैं। आपके ग्रंथ—बालरामायण, बालभारत, कर्पूरमंजरी (सट्टक) और विद्धशालभंजिका ये नाटक, काव्यमीमांसा नामक काव्यशास्त्रपरक ग्रंथ और हरविलास नामक महाकाव्य। समय ९वीं सदी का अन्त और १०वीं सदी का प्रथम पाद।

१७. **लक्ष्मणादित्य**—क्षेमेन्द्र के एक शिष्य।

१८. **वाचस्पति**—दशरूपक के टीकाकार धनिक के पूर्वकाल के कवि। आपके श्लोकों के उद्धरण सुभाषितावलियों में पाये जाते हैं।

१९. **विद्यानन्द**—आपके बारे में कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं होती है। डॉ. ऑफ्रेक्ट ने अपनी सूची में आपको वैयाकरण बतलाया है। क्षेमेन्द्र के द्वारा उदाहृत एकमात्र पद्य से आपके कवित्व का पता चलता है।

२०. **व्यास**—पराशर के पुत्र, महाभारत तथा पुराणों के कर्ता और पूज्य महर्षि। क्षेमेन्द्र के मन में आपके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा एवं आदरभावना थी। क्षेमेन्द्र अपने को व्यासदास कहते हैं, यही उस श्रद्धा का प्रमाण है।

२१. **शिवस्वामी**—काश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा के (सन् ८५५–८८३) समय में ख्याति प्राप्त कवियों में एक। मुक्ताकण, आनन्दवर्धन, रत्नाकर प्रभृति के समसामयिक। चन्द्रमित्र नामक बौद्ध गुरु के आदेश के अनुसार आपने कप्फिणाभ्युदय नामक २० सर्गों के महाकाव्य की रचना की। आप शिवभक्त थे। आपने ७ महाकाव्यों, अनेक नाटकों तथा शिवस्तोत्रपरक लक्षावधि पद्यों का प्रणयन किया ऐसा माना जाता है।

२२. हर्ष—उत्तर भारत के एक सुप्रसिद्ध, भूतकालीन राजा (राज्य-काल सन् ६०४–६४७)। आप स्वयं विद्वान् एवं कवि थे। बाण, मयूर, मातंगदिवाकर और अन्य अनेक पण्डित तथा कवि आपके दरबार के मानों भूषण थे। आपके तीन नाटक—नागानन्द, रत्नावली तथा प्रियदर्शिका—निरतिशय प्रसिद्ध हैं।

परिशिष्ट 'उ'

प्रमुख संदर्भ-ग्रन्थों की सूची

संस्कृत ग्रन्थ—

१. आनन्दवर्द्धन—ध्वन्यालोकः, हरिदास संस्कृत-ग्रन्थमाला, ६६, १९५३ ई०।

२. कुन्तक—वक्रोक्तिजीवितम्, कलकत्ता ओरिएण्टल् सीरीज्, ८, १९२८ ई०।

३. क्षेमेन्द्र—कविकण्ठाभरणम्, हरिदास संस्कृत सीरीज्, २४, १९३३ ई०।

४. " —क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसङ्ग्रहः, हैदराबाद, १९६१ ई०।

५. " —अवदानकल्पलता, सं० शरच्चन्द्र दास, १८८८ ई०।

६. " —देशोपदेश, सं० पं० मधुसूदन कौल, १९२३ ई०।

७. " —नर्ममाला, " " " " "

८. " —भारतमंजरी, काव्यमाला नं० ६४, निर्णयसागर, बम्बई १८९८ ई०।

९. " —रामायणमंजरी, " " ८३, " " १९०३ ई०।

१०. दण्डी—काव्यादर्शः, सं० नृसिंहदेव शास्त्री, मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास प्रकाशन, लाहौर, १९२५ ई०।

११. भामह—काव्यालंकारः, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् प्रकाशन, पटना, १९६१ ई०।

१२. भिक्षु-गौरीशङ्कर—सर्वतन्त्रसिद्धान्तपदार्थलक्षणसङ्ग्रहः, संवत् २००६।

१३. राजशेखर—काव्यमीमांसा, हरिदास संस्कृत सीरीज् १४, १९३४ ई०।

१४. रुद्रट—काव्यालंकारः, काव्यमाला २, निर्णयसागर, बम्बई, १९२८ ई०।

१५. लक्ष्मीपुर श्रीनिवासाचार्य—मानमेयरहस्यश्लोकवार्तिकम्, मैसूर, १९२५ ई०।

१६. वामन—काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः—ओरिएण्टल् बुक् एजन्सी, पूना, १९२७ ई०।

अंग्रेजी ग्रन्थ—

1. De S.K.—History of Sanskrit Poetics, 1960, Vols. I & II.
2. „ „ —Sanskrit Poetics as a Study of Aesthetic, 1963.
3. Kane P.V.—History of Sanskrit Poetics, 1961.
4. Kaul Madhusudan—देशोपदेश & नर्ममाला, Ed., 1923, Introduction.
5. Keith A. B.—A History of Sanskrit Literature, 1953.
6. Raghavacharya E.E. & Padhye D.G.—Minor Works of Kṣemendra, 1961, Introduction.
7. Raghavan V.—Studies on Some Concepts of the Alaṅkāra Śāstra, 1942.
8. Sūryakānta—Kṣemendra Studies, Poona Oriental Series No 91, 1954.